आधुनिक साहित्य

Aadhunik Sahitya

साहित्य, संस्कृति एवं आधुनिक सोच की त्रैमासिकी

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

विश्व हिंदी साहित्य परिषद

प्रकाशन | वितरण | राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन

प्रमुख उद्देश्य

- हिंदी का प्रचार-प्रसार
- उत्तम साहित्य का प्रकाशन
- साहित्यकार साहित्य योजना
- पुरस्कार प्रतियोगिता का संचालन
- रोजगारोन्मुख हिंदी के लिए प्रयास
- हिंदी एवं भारतीय भाषाओं का समग्र विकास
- साहित्य एवं संस्कृति के चहुँमुखी विकास के लिए प्रयत्न
- संग्रहालय, पुस्तकालय एवं संगोष्ठी कक्ष की स्थापना में प्रयासरत

मुख्यालय

एडी-94-डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088

संपर्क सूत्र : 09811184393, 011-47481521

ई-मेल : vhspindia@gmail.com, aadhuniksahitya@gmail.com

Website : www.vhsp.in

आधुनिक साहित्य

साहित्य, संस्कृति एवं आधुनिक सोच की त्रैमासिकी

वर्ष/Year-13 अंक/Vol.-51-52 जुलाई-दिसंबर 2024/July - Dec. 2024 द्विभाषी/Bilingual

संयुक्तांक

Aadhunik Sahitya

संस्थापक संपादक

डॉ. आशीष कंधवे*

Founder Editor

Dr. Ashish Kandhway

सह-संपादक Co-Editor

रजनी सेठ Rajni Seth

कार्यकारी संपादक Executive Editor

ममता गोयनका Mamta Goenka

संवाददाता (अंग्रेजी) Correspondent (English)

निलांजन बैनर्जी Nilanjan Banerjee

संरक्षकगण Patrons

प्रो. उमापति दीक्षित Prof. Umapati Dixit

कुमार अविकल मनु Kumar Avikal Manu

*आशीष कंधवे (मूल नाम आशीष कुमार)

आधुनिक साहित्य में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबन्धित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा दिल्ली क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में सम्पादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक हैं।

आधुनिक साहित्य

साहित्य, संस्कृति एवं आधुनिक सोच की त्रैमासिकी

RNI No. DELBIL/2012/42547
ISSN 2277 - 7083

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक अथवा आधुनिक साहित्य की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
एडी-94-डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
फोन : 011-47481521, +91-9811184393
ई-मेल : aadhuniksahitya@gmail.com
adhuniksahitya@gmail.com

आलेख/रचना/कहानी में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के हैं इससे प्रकाशक या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

मूल्य : ₹ 500 प्रति अंक

शुल्क : तीन वर्ष (12 अंक) ₹ 6000
पांच वर्ष (20 अंक) ₹ 9000
(डाक/कोरियर खर्च सहित)
आजीवन सदस्यता ₹ 21,000
विदेश के लिए (3 वर्ष) 200 डॉलर

शुल्क **'AADHUNIK SAHITYA'** के नाम पर भेजें।
Account Name : Aadhunik Sahitya
Account No. : 16800200001233
Bank : Federal Bank Ltd.
Branch : Shalimar Bagh
New Delhi-110088
IFSC Code : FDRL0001680

'आधुनिक साहित्य' द्विभाषी त्रैमासिकी आशीष कुमार के स्वामित्व में और उनके द्वारा एडी-94डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088 से प्रकाशित तथा आभा पब्लिसिटी, 163, देशबंधु गुप्ता मार्केट, करोलबाग, नई दिल्ली से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ. आशीष कुमार।

'AADHUNIK SAHITYA' A quarterly bilingual (Hindi & English) Journal of Literature, Culture & Modern Thinking owned/published/printed/edited by Ashish Kumar from AD-94-D, Shalimar Bagh, Delhi-110088 and printed at Abha Publicity, 163, Deshbandhu Gupta Market, Karolbagh, New Delhi.

अनुक्रम

संपादकीय

- डॉ० आशीष कंधवे / ***लोकतांत्रिक नवाचार और नवनिर्माण***/ 7

हिंदी प्रभाग

- नरेन्द्र कोहली / **लौटती बरात / 12**
- महावीर राजी / **बीज / 29**
- कृष्ण नागपाल / **कितनी अधूरी किताब / 33**
- नीलम कुलश्रेष्ठ / **तीस बरस पहले की पदचाप / 37**
- रेखा राजवंशी / **'स्टेपिंग स्टोन' / 48**
- सीताराम गुप्ता / **गालीना वासीलिएव्ना ज़िंकोवा की कुछ यादें / 56**
- शालिनी मिश्रा / **'ब्रह्मपुत्र में विलीन होता माँझुली' / 61**
- डॉ. नूतन पाण्डेय / **मॉरिशस की भोजपुरी लोककथाओं में जीवन मूल्य / 67**
- नेहा साव / **रजनी मोरवाल की कहानियों में समकालीन युगबोध / 83**
- श्री राजीव पुटेल / **संबलपुरी लोकगीतों में समाज का स्वरूप / 91**
- निहारिका मिश्र / **सत्यवादी साहित्य- साधक- उत्कलमणि गोपबंधु दास / 96**
- सन्तोष खन्ना / **हिंदी आलोचना: एक संक्षिप्त विवेचन / 102**

संपादकीय

लोकतांत्रिक नवाचार और नवनिर्माण

यह अटल सत्य है कि भारत हर युग में मनीषियों से सुशोभित रहा है। इन्हीं मनीषियों ने समस्त कालचक्र को चार युगों में विभक्त किया है। भारतीय मनीषियों का ध्यान मुख्य रूप से मनुष्य के जन्म, कर्म और कर्म-साधना पर केन्द्रित था। 'राजा हरिश्चन्द्र' सतयुग के प्रतीक हैं। जन्म और कर्म की उच्चता का मापदण्ड बना। 'राम' त्रेता युग के प्रतीक हैं। रामराज में जन्म और कर्म की न्याय-संगतता में कोई संदेह नहीं है पर कर्म-साधना कहीं न कहीं स्खलित दिखाई पड़ती है। बाली के वध को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है। द्वापर के प्रतीक 'कृष्ण' हैं। इस युग में कर्म का औचित्य तो सुरक्षित रहा पर साधना की मर्यादा में बिखराव बहुत तेजी से हुआ। जन्म के अनुपात में कर्म का महत्व विशेष हो गया और कर्म-साधना सब निष्फल हो गए। हम सब स्वार्थी हो गए और कलयुग को चरितार्थ करने में कोई श्रम नहीं छोड़ा।

ऐसी परिस्थिति में यह सुखद आश्चर्य का विषय है कि आचार्य विजयेन्द्र स्नातक कलयुग में सतयुग की आत्मा को धारण कर हमारे बीच आए। ऐसा मैं इसलिये कह रहा हूँ कि अपने शिष्यों के अनुसार, आप जीवनपर्यन्त जन्म, कर्म और कर्म-साधना तीनों के औचित्य से न्याय करते रहे।

मनुष्य की आवधारणा को आपने हमेशा वरीयता दी। मनुष्य के भविष्य की परिकल्पना आपकी दृष्टि में मानवीय सरोकारों की ऐसी उद्भावना है जो व्यक्ति को व्यक्ति से, व्यक्ति को समाज से, व्यक्ति को लोक से, व्यक्ति को देश से यानी व्यष्टि को समष्टि से मिलाती है, जोड़ती है। पश्चिमी संस्कृति जहाँ मनुष्य की उपभोक्ता नहीं सहयात्री है। आचार्य विजयेन्द्र स्नातक इसी सिद्धांत पर चलने वाले ऐसे सहयात्री थे जिन्होंने साहित्य, समाज और भाषा के लिए अपना पूरा जीवन होम कर दिया।

स्वतंत्रता के पश्चात अत्यंत नियोजित माध्यम से भारत की मूल संस्कृति प्रवृत्ति धर्म और अध्यात्म को पाठ्यक्रमों से लेकर समाज तक से गायब करने की प्रवृत्ति बनाई गई। इस प्रवृत्ति के कारण वामपंथ जैसी विचारधारा ने अपनी पकड़ बना ली विशेषकर शैक्षणिक संस्थाओं और शैक्षणिक व्यवस्थाओं पर। इसका परिणाम यह हुआ कि हम साधारण भारतवासी अपने स्वाभिमान से दूर हो गए, अपने इतिहास से दूर हो गए, अपनी गौरवशाली ज्ञान परंपरा से दूर हो गए और अपनी सांस्कृतिक चेतना से दूर हो गए। इस

नियोजन को और शक्ति तब प्राप्त हो गई जब इस देश में सेकुलरिज्म अर्थात धर्मनिरपेक्षता नाम के शब्द का प्रयोग संवैधानिक माध्यम से किया जाने लगा। मुझे आज तक यह बात समझ नहीं आई है कि जब व्यक्ति धार्मिक होता है तो कोई भूमि या कोई भूभाग धर्मनिरपेक्ष कैसे हो सकता है।

यह धर्म ही तो था जिसकी वेदना हमें 1947 में सहनी पड़ी और एक बड़ा भूभाग भारत के हिस्से से भारत के स्वाभिमान से कटकर अलग हो गया। अर्थात सेकुलरिज्म अपने आप में एक बड़ा संशय है, कंफ्यूजन है क्योंकि जो व्यक्ति अपने घर में धार्मिक है अपने समाज में अध्यात्मिक है वह राष्ट्र के स्तर पर धर्मनिरपेक्ष कैसे हो सकता है? इस धर्मनिरपेक्षता की परिकल्पना ने भारत के बुद्धिजीवियों से लेकर भारत की साधारण जनता तक को दो हिस्सों में बांट कर रख दिया। और यही सेकुलरिज्म शब्द को संवैधानिक आवरण देने वालों का लक्ष्य था। इसी सेकुलरिज्म की ओट में अनेक ऐसी चेतनाओं का जन्म हुआ जो हमारे भारतीय संस्कार, भारतीय परंपरा, भारतीय आस्था और भारतीय उत्सव धर्मिता के लिए ठीक नहीं था। पर वोट की राजनीति ने भारतीय लोकतंत्र को एक ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया जहां एक विशेष वर्ग अपने धार्मिक उन्माद और कट्टरता के कारण स्वयं को अल्पसंख्यक श्रेणी में रखकर सभी प्रकार की राष्ट्रीय सुविधाओं का उपयोग, उपभोग करता रहा वहीं दूसरी ओर बहुसंख्यक हिंदू समाज राजनीति का ऐसा शिकार हुई की दलित महादलित हो गया, आदिवासी महाआदिवासी हो गया और उपेक्षित हो गया। हिंदू होते हुए भी हिंदुओं ने कभी इनकी सुध नहीं ली जिसका परिणाम यह हुआ कि इस वर्ग में बहुत तेजी से धर्म परिवर्तन जैसी कुरीतियां स्वीकार हो गई। दरअसल सेकुलरिज्म के परदे के पीछे छुपा हुआ एजेंडा भी यही था जो धीरे-धीरे संवैधानिक डंडे के माध्यम से देश पर लागू किया जा रहा था। जेएनयू से लेकर एएमयू तक और कई अनेक महत्वपूर्ण विश्वविद्यालयों ने स्वयं को इस देश का सबसे बुद्धिजीवी वर्ग घोषित कर दिया था । यही वर्ग नीति नियंता बन गया था और इसी वर्ग से निकले हुए लोग भारत के लोकतंत्र को अपने हिसाब से विश्व में लज्जित कर रहे थे। हमारी आंखों में अंग्रेजी के सपने पल रहे थे और हमारे अपने ही अपने धर्म-संस्कार और परंपराओं के विरुद्ध आग उगल रहे थे। जितना सुनियोजित और सुव्यवस्थित रूप से इस कार्य को अंजाम दिया गया यह हम सबके लिए एक शोध का विषय है।

यथार्थ में अगर हम बात करें तो 21वीं सदी का दूसरा दशक भारत के नवभारत बनने के बीज का दशक है। सन 2014 में हुए राजनीतिक परिवर्तन से अनेक वर्जनाएं टूटी है, अनेक विचारधाराएं धूल धूरसित हो गई हैं। एक ओर राष्ट्रवाद का उदय देश के हर वर्ग में देखने को मिल रहा हैं वही दूसरी ओर भारत से भारत के लोगों का नवजुड़ाव ही नवभारत की नींव का पत्थर बनने वाला है। विकसित भारत की परिकल्पना और 2047 में स्वतंत्रता के शताब्दी वर्ष पर जो सपने देखे गए हैं और दिखाए गए हैं आज उनके बीच घटने वाली घटनाओं का आकलन करने का समय है। अमृत महोत्सव के इस काल में सत्य निष्ठा के साथ अगर राष्ट्र का आकलन किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि विगत 75 वर्षों में देश विश्व के अन्य विकसित देशों के समकक्ष खड़ा हो जाता। परंतु ऐसा नहीं हुआ या फिर स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो ऐसा होने नहीं दिया गया।

मैं यह नहीं कह सकता कि स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्र में विकास नहीं हुआ है परंतु विकास जिस गति से, जिस निष्पक्षता से और जिस ईमानदारी के साथ होनी चाहिए थी वह बिल्कुल नहीं हुआ है। राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुसार विकास करना तर्क हो सकता है परंतु किसी भी राष्ट्र के भविष्य के आकलन के अनुसार उस राष्ट्र का विकास करना ही सत्य निष्ठा से राष्ट्र की सेवा है।

भारत ही नहीं किसी भी राष्ट्र की मूल संचेतना को अगर समाज में जागृत नहीं किया जाएगा तो उसका स्वाभिमान स्वतः ही समाप्त हो जाता है। भारत में तो भारतीयों के स्वाभिमान को बहुत ही योजनाबद्ध तरीके से समाप्त करने की प्रक्रिया अपनाई गई। स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा पद्धति इस हिसाब से विकसित की गई ताकि एक वर्ग विशेष को विशेष लाभ हो और भाषा के संदर्भ में भी ऐसी व्यवस्था की गई किस शासक और जनता की भाषा अलग-अलग रहे।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमारी छवि एक गरीब देश की बन गई, ऐसे देश की जहां न्यायालय में न्याय नहीं मिलता, शिक्षा व्यवस्था चरमराई हुई है, लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिलता। ऐसा करने से एक विशेष वर्ग लंबे समय तक शासक के रूप में भारत पर राज करता रहा। अपने हिसाब से शिक्षा नीति बनाता रहा और अपने हिसाब से भारतीय संस्कृति को तोड़ता-मोड़ता रहा, भारत के गौरवशाली इतिहास को मिटाता रहा।

परंतु संपूर्ण हुए 75 वर्षों में हिंदू, हिंदुत्व, ज्ञान, गायत्री, गंगा, गीता की बात भी कहीं न कहीं जीवित रही। बहुसंख्यक समाज में ऐसे लोग थे जिन्होंने अपनी सनातन संस्कृति और सनातन ज्ञान परंपरा को बचाए रखने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। इस श्रेणी में अनेक व्यक्तियों का भी नाम लिया जा सकता है परंतु मुख्य भूमिका राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की रही जिन्होंने अपने अथक प्रयास से भारतीय जनमानस पर अपने धर्म अध्यात्म के प्रति, राष्ट्र के प्रति और सामाजिक दायित्वों के प्रति निर्वहन की जागृति करती रही। अनेक विघ्न बाधाओं से संतुलन स्थापित करते हुए संघ ने राष्ट्रीय चेतना के निर्मिति में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

नव भारत की परिकल्पना, राष्ट्रवाद का उदय और राजनीतिक व्यवस्था, राष्ट्रवाद के साथ सांस्कृतिक चेतना की अनुभूति, आदिवासी हिंदुओं से लेकर दलित हिंदुओं तक की स्थिति को समझे बिना तथा सेकुलरिज्म से दो कदम आगे की राजनीति और भविष्य में भविष्य के भारत में कमजोर पड़ते सेक्युलरिज्म के भविष्य को समझे बिना देश के आत्म गौरव को बढ़ाना कठिन होगा।

भाषा संस्कृति और साहित्य के नवाचार के साथ-साथ इतिहास का नवलेखन भविष्य के लिए हमें अतीत में लौटना होगा। क्योंकि अतीत के अनुभवों में ही भविष्य की कल्पना छुपी होती है। हमारा अतीत जितना गौरवशाली है हमारा भविष्य उतना ही समृद्ध हो सकता है। शर्त बस इतनी है कि आपको अपने गौरवशाली अतीत के बारे में जानकारी हो।

आज के समय में सबसे महत्वपूर्ण है नवभारत की परिकल्पना, एक ऐसे भारत की परिकल्पना जो शैक्षणिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर आत्मनिर्भर हो जाए। कल्पना को संपूर्ण करने के लिए अनेक विचारधाराएं आपस में टकरा रही हैं परंतु जो सबसे महत्वपूर्ण है वह भारत की नई पीढ़ी के बीच में राष्ट्रबोध को जागृत करना।

नव भारत के निर्माण में लोकतंत्र के नवाचार को हमें समझना पड़ेगा। नए भारत की दिशा क्या होगी, नए भारत की दशा क्या होगी, इसका आकलन भी करना पड़ेगा और आने वाले 100 वर्षों के लिए एक योजना बनानी पड़ेगी। मैं यह समझता हूं कि नव भारत के निर्माण में लोकतंत्र का नवाचार कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर टिका होगा।

एक और विकट समस्या जो हम सबके बीच में खड़ी है वह है आदिवासियों और दलित हिंदुओं की। दलित शब्द का प्रयोग कब से भारतीय संस्कृति में प्रचलित है इस विषय पर बात करने का कोई गंभीर औचित्य नहीं है परंतु दलित शब्द का राजनीतिक प्रयोग जिस स्तर पर किया गया है और जिस प्रकार से उन्हें भारत की मूल धारा यानी हिंदुत्व के एजेंडे से अलग किया गया है यह शोध का विषय है। ऐसी कौन सी परिस्थितियां थी जिसमें हिंदू समाज अपने लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपने ही धर्म को मानने वाले लोगों को अलग करने का कार्य करती है।

वर्ग व्यवस्था के विस्तार से जाति व्यवस्था का जन्म हुआ। जाति व्यवस्थाओं का आधार सामान्यतः पूरे देश में व्यवसाय, आर्थिक व्यवहार ही रहा। किसी व्यवसाय विशेष या शिल्प विशेष से जुड़े परिवार धीरे-धीरे कुटुंब में और अपने कुटुंब तक संबंधी व्यवसायिक जातियों में विकसित होते चले गए। तेल का व्यवसाय करने वाले तेली कहलाए, सोने के गहने बनाने वाले सुनार, पुष्प हार बनाने वाले माली तो चर्म सामग्री के निर्माणकर्ताओं को चर्मकार कहा गया इसी प्रकार मिट्टी के कलश बनाने वाले कुम्हार, लकड़ी के सामान की निर्मिति करने वाले बढ़ई और समाज में मनुष्यों के द्वारा फैलाई गई गंदगी को निस्तारित करने वालों को डोम कहकर पुकारा गया। अर्थात समाज में वह सभी लोग किसी न किसी विशेष शिल्प या कौशल के धनी थे जिसके कारण ही उनका नामकरण किया गया था। इसे हम विशुद्ध रूप से व्यवसायिक व्यवस्था के रूप में देख सकते हैं जबकि बीसवीं और 21वीं सदी में जब हम संचार क्रांति के युग में जी रहे हैं और वैज्ञानिक रूप से इतने समृद्ध हो चुके हैं कि पूरी दुनिया एक गांव के रूप में विकसित हो रही है, ऐसी स्थिति में भारत की समृद्ध परंपराओं का दलित अथवा वंचित के रूप में पहचान करना शर्मनाक स्थिति है। विश्व के अनेक विकसित देशों में इस प्रकार के कार्य करने वाले लोगों का सम्मान उतना ही होता है जितना विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले एक शिक्षक अथवा एक बड़े व्यवसायी का। अर्थात विश्व की अन्य व्यवस्थाओं ने हमारी इन व्यवस्थाओं से स्वयं को समृद्ध करने का कार्य किया है और इस व्यवस्था के जनक भारतवंशियों ने दलित और महादलित जैसे विशेषण लगाकर उन्हें समाज की मूल धारा से काटने का कार्य किया है। निश्चित रूप से इस वर्ग को स्पष्ट रूप से कहे तो इस हिंदू वर्ग को अपनी राष्ट्रीय अस्मिता, चेतना और व्यवस्था से सफलतापूर्वक जोड़ना ही लोकतंत्र का नवाचार होगा। यही स्थिति आदिवासियों के लिए

भी है परंतु वह अपने कौशल या किसी विशेष ज्ञान के लिए नहीं जाने जाते थे बल्कि आदिवासियों के लिए सरल शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि प्रकृति और पर्यावरण के प्राकृतिक संरक्षक के रूप में विश्व के समस्त भूभाग पर आदिवासियों की उपस्थिति रही है और है। अर्थात आदिवासी मनुष्यों के द्वारा निर्मित कोई वर्ग नहीं है बल्कि इस प्रकृति की नैसर्गिक चेतना को बचाए रखने के लिए जिस वर्ग की उत्पत्ति हुई है उसे हम आदिवासियों के रूप में जानते हैं। उनकी अपनी न्यायिक व्यवस्था है, उनकी अपनी सांस्कृतिक अवधारणाएं हैं और निश्चित रूप से भारत जैसे विशाल देश में आदिवासियों की भी एक समृद्ध परंपरा रही है। हमारे लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उन्हें समस्त लोकतांत्रिक अधिकार प्रदान कर उनके सांस्कृतिक और सामाजिक विरासत को संरक्षित रखा जाए तथा उनकी मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं को भी पूर्ण किया जाए। मैं यह समझता हूं कि जब तक लोकतंत्र में बहुसंख्यक समाज की चिंता समरस भाव से नहीं की जाएगी तब तक लोकतांत्रिक नवाचार सुनने में तो अच्छा लगेगा परंतु यथार्थ के धरातल पर बहुत दूर।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऐसे शब्दों का प्रयोग इतने व्यापक स्तर पर किया गया कि भारत की समस्त जनता अपने मूल आधार से विचलित हो गई। यह शब्द कुछ और नहीं बल्कि सेकुलरिज्म, धर्मनिरपेक्षता है । इस शब्द के अर्थ को भारत के संदर्भ में कैसे परिभाषित किया जाए यह एक विकट समस्या है परंतु इस शब्द के पास संवैधानिक अधिकार प्राप्त है जिसके कारण एक बड़े राजनीतिक दल नहीं हिंदुओं और हिंदुत्व से संबंधित अनेक जनजातियों, बिरादरियों और परंपराओं को मानने वाले लोगों को मतिभ्रम कर दिया। भ्रम की स्थिति ऐसी उत्पन्न हुई कि हिंदुओं में खुद को तोड़ लेने की, बांट लेने की होड़ मच गई। अभी तक यह नहीं कहा जा सकता कि हिंदुओं ने स्वयं को बांटने की प्रक्रिया को बंद कर दिया है। अर्थात यह अभी भी जारी है परंतु गति जरूर धीमी हुई है इसलिए मैं अब कह सकता हूं कि सेकुलरिज्म का पर्दा धीरे-धीरे गिर रहा है। सेकुलरिज्म भारत के लोकतंत्र में एक ऐसे नाटक की तरह उभरा और इस प्रकार से उसका मंचन किया गया की सेकुलरिज्म के आवरण के भीतर लोग अपनी भारतीयता को ढूंढने लगे और अपने मूल सांस्कृतिक विरासत, पारिवारिक संरचना, धार्मिक आस्था, अध्यात्मिक अनुष्ठानों से एक झटके में अलग हो गए। इस नाटक में देश का कितना नुकसान हुआ है इसका आकलन सरल नहीं है परंतु अगर किसी भूल को भूल समझ कर इसे ठीक करने की दिशा में आगे बढ़ने का समय दिखाई पड़ता है तो वह वर्तमान है। अतीत में हुए भूल को वर्तमान में ही ठीक किया जा सकता है ताकि भविष्य सुरक्षित हो। वर्तमान सरकार इस बिंदु पर किस प्रकार चिंतन कर रही है इस बात से मैं अवगत नहीं हूं परंतु भारत की अस्मिता और भारत की मूल पहचान को आने वाले सदियों के लिए अगर संरक्षित करना है तो निश्चित रूप से हमें इस शब्द से भी छुटकारा पाना होगा जैसे कश्मीर से धारा 370 से हमने छुटकारा पाया है।

–डॉ. आशीष कंधवे
+91–9811184393

लौटती बरात

– नरेन्द्र कोहली

कमरे में मोबाइल बजता रहा। मैंने उसकी चिंता नहीं की। हो सकता है कि भास्कर का फोन हो। हो सकता है अशोक जी का हो। हो सकता है निरंकुश का हो। ... मैं चैन से नहा तो लूं। फोन का क्या है, उसका तो काम ही बजना है, फिर बज लेगा। नहीं तो मैं ही कर लूंगा।

शायद अक्तूबर 2017 में मुझे रांची से एक निमंत्रण मिला था। मैं असमंजस में था कि उनका निमंत्रण स्वीकार करूं या न करूं। मैं "निरंकुश" से दो-एक बार मिला अवश्य था; किंतु उनके विषय में विशेष कुछ जानता नहीं था। बुला लें और उनके पास रुपए-पैसे का प्रबंध न हो तो ? ऐसा मेरे साथ नॉर्वे में हो चुका था। मैंने भास्कर को फोन किया। उसका उत्तर बहुत स्पष्ट नहीं था। उसने कहा कि वह निरंकुश को जानता तो है; किंतु ... उसने मुझे परामर्श दिया कि मैं अशोक प्रियदर्शी से बात करूं। वे ठीक-ठाक बता सकेंगे।

मैंने अशोक जी को फोन मिलाया। उन्होंने बताया कि निरंकुश जी का अच्छा खासा संगठन है। वे प्रतिवर्ष एक आयोजन तो करते ही हैं। इस वर्ष उनका विशेष आयोजन है। इसलिए वे दिल्ली तक पहुंचना चाहते हैं। वे दो लोगों को बुला रहे हैं। दोनों ही दिल्ली से हैं।

" वैसे मैं उनसे बात करूंगा।" उन्होंने कहा, " होटल इत्यादि का पता कर लूंगा। विमान की टिकट तो वे भेज ही देंगे, नहीं तो मत आइएगा।"

"ठीक है, आप बात कर लीजिए और बताइए।"

उनकी ओर से हरी झंडी हो गई तो मैंने अपनी स्वीकृति दे दी और भास्कर को भी सूचित कर दिया। तब उसने बताया कि वह निरंकुश जी के उस संगठन से एक बार सम्मानित हो चुका है। पर ... पर के आगे वह कुछ नहीं बोला। मैं समझ गया कि वह उनसे प्रसन्न नहीं था।

"तुम आओगे ?" मैंने पूछा। " अवश्य। तुम आओगे तो अवश्य आऊंगा।"

रांची विमानपत्तन पर उतरा तो शरीर कुछ ढीला लग रहा था। दिल्ली से चलते हुए भी मन कुछ ठीक-सा नहीं लग रहा था। अब रांची .... बाहर तो निकलना ही था। बैल्ट पर से अपनी अटैची उठाई और उसे ठेलता हुआ या उसके सहारे लुढ़कता हुआ बाहर आ गया।

सामने ही निरंकुश और अशोक जी खड़े थे। उन्होंने मेरी अटैची थाम ली और मुझे लगा कि मेरा तो चलने का सहारा ही छिन गया।

औपचारिक बातें हुईं। यात्रा कैसी थी ? दिल्ली का मौसम कैसा है ? रांची में गर्मी है। ...

हम गाड़ी में बैठ गए। स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि मैं चहक सकता, जबकि मुझसे अपेक्षा वही थी। वे बातें करते रहे और मैं हूं-हां करता रहा। होटल के कमरे में आ कर मैं निढाल सा अधलेटा हो गया। " भोजन करने नीचे चलेंगे ?" निरंकुश ने पूछा। और तब मेरे ध्यान में आया कि मधुरिमा ने मेरे लिए आलू का एक पराठा बनाया था। मैंने उड़ान की अवधि में तो खाया नहीं। अभी बैग में होगा। " मेरा भोजन मेरे साथ है।" मैंने बैग में से वह पैकेट निकाल लिया, " मैं इसे ही खाऊंगा।" " पर हम तो खाएंगे न।" निरंकुश ने कहा।

"आप खाइए।" और मैंने गोलाई में लिपटा वह पराठा खाना आरंभ कर दिया, " पांच तो बज ही रहे हैं, लगता है कि रात को भी कोई आवश्यकता नहीं होगी।"

अगली सुबह मन और शरीर दोनों ही अस्वस्थ लग रहे थे। कहां मैंने सोचा था कि स्वास्थ्य सुधरेगा और कहां वह और बिगड़ गया। ज्वर भी लग रहा था। थर्मामीटर था नहीं कि ज्वर नाप लेता। ऐसे कोई विशेष पता नहीं चलता। 99 डिग्री भी हो तो लगता है बंदा किसी काम का नहीं रहा। फोन की घंटी बजी।

" कौन आ गया।" मैंने अपने-आप से पूछा।

मन ऐसा नहीं था कि किसी का स्वागत कर सकता। इस समय तो कोई न ही आए तो अच्छा है। आए तो कॉफी का एक प्याला बना कर पिला जाए।

मैंने लेटे-लेटे ही, हाथ बढ़ा कर चोंगा उठाया। " हां जी।" " सर, डॉ. भास्कर राव आए हैं।" रिसेप्शन से कहा गया।

" भेज दीजिए।" मैंने कहा।

भास्कर आया है अर्थात् भास्कर और सूर्या आए हैं। समझ नहीं आया कि उनका आना अच्छा लगा या नहीं। पर आए हैं तो बैठाना तो पड़ेगा ही। आखिर वे मेरे लिए जमशेदपुर से आए हैं।

लेटा तो मैं था ही। अब चादर भी ओढ़ ली।

दरवाजा खटका।

“ आ जाओ। दरवाज़ा खुला है।“ मैंने लेटे-लेटे ही कहा। मुझे स्वयं ही लगा कि मेरा स्वर बहुत क्षीण था।

कपाट खुले और भास्कर का चकित सा चेहरा दिखाई दिया।

सूर्या उसे पीछे छोड कर पहले कमरे में आ गई, " हम तो मान रहे थे कि तुम स्वयं ही हमारा स्वागत करने के लिए दरवाजा खोलोगे।"

उसकी यह असामयिक अपेक्षा। वह नहीं जानती थी कि कब क्या बोलना है।

मैंने मुस्कराने का प्रयत्न किया, " नहीं खोल पाया। रुष्ट मत होना।"

वे आगे बढ़ आए। पलंग के पास आ कर गले मिलने के लिए झुके।

" अरे मुझे उठने का समय तो दो।"

" लेटे रहो। लेट रहो।" सूर्या ने कहा।

मुझे उठने का समय नहीं दिया। लेटे-लेटे से ही गले मिले। मैंने पीठ थपथपा दी।

मेरे लिए यह अनुभव नया भी था और विचित्र भी। आज तक मुझ से कोई इस प्रकार गले नहीं मिला था। मुझे लगा जीवित व्यक्ति से तो कोई इस प्रकार नहीं मिलता। हां शव से लिपटने की बात और है।

" नरेन्द्र तुम्हें तो बुखार है।" सूर्या ने जैसे मुझे सूचना दी।

"जानता हूं।" मैंने कहा। मैंने देखा कि वे लोग कुछ हताश हो गए थे। निरुत्साहित और उदास भी।

" कितने वर्षों से तुम्हें देख रही हूं। इस प्रकार दुर्बल और अस्वस्थ तो कभी नहीं लगे।" सूर्या ने कहा।

" नहीं लगा, क्योंकि कभी अस्वस्थ था नहीं।" मैंने कहा, " और यह साधारण ज्वर ही तो है। कैंसर तो नहीं। उतर जाएगा। ज्वर किसको नहीं होता।" " मैं तो मानता था कि तुममें कोई ईश्वरीय ज्योति है। उसीसे सदा जगमगाते रहते हो। तुम विशिष्ट हो। ऑल पावरफुल।" भास्कर बोला।

" बैठो यार। खड़े क्यों हो ? और मुझे महामानव मत बनाओ।" मैंने अपनी ऊर्जा बटोरी।

वे लोग कुर्सियां खींच कर पलंग से सट कर बैठ गए।

" तबीयत कब से खराब है?"

" दो-तीन दिनों से ऐसा ही हूं। डायरिया। पेट में कोई इनफ़ेक्शन है। उसी से ज्वर भी है और कमजोरी भी।" मैंने मंद स्वर में कहा।

" बोलने में कष्ट है ?" सूर्या ने पूछा। " तुम से बोलने में नहीं।" मैंने शरारत करने का प्रयत्न किया।

" मुझ से बोलने में है।" भास्कर हंसा।

" भास्कर सच बोल रहा है।" मैंने कहा। " बकवास मत करो।" सूर्या बोली, " ऐसी हालत में तुम आए ही क्यों ?"

" नहीं आना चाहिए था ?"

" नहीं।"

" तो तुम्हारी डांट कैसे सुनता।" मैंने गंभीर चेहरा बनाया, " आने लायक हालत तो नहीं थी, किंतु निरंकुश जी से कमिटमेंट था। वचन दिया था उन्हें। मैं नहीं चाहता था कि न आकर उनका कार्यक्रम बिगाड़ूं।"

" टिकट भी ये लोग महीनों पहले भेज देते हैं।" भास्कर ने मेरा बचाव किया, " बाट जोहते हैं कि कब नरेन्द्र आएंगे। नहीं आने पर आयोजकों को काफ़ी सेटबैक होता है कि नरेन्द्र के नाम पर वक्ताओं और

श्रोताओं को बुला तो लिया...।"

" प्रयत्न यही होता है कि आना स्वीकार किया है तो किसी भी प्रकार पहुंचूं ही।"

" ठीक है," सूर्या बोली," लेकिन भाषण स्वास्थ्य से बढ़कर तो नहीं है; न निरंकुश की सफलता, तुम्हारे स्वास्थ्य से अधिक महत्वपूर्ण है। अस्वस्थ होना और वह भी अपने घर और नगर से दूर।"

" सोचा था शायद ज्वर उतर जाएगा; पर किस का सोचा हुआ होता है।" मैंने कहा, " एयरपोर्ट पर उतरने के बाद से ही कष्ट बढ़ता जा रहा है। देखो, तुम्हारे आने से भी कम नहीं हुआ।" " चुप।" वह बोली, " मैं तुम्हारी सखी हूं, दवा की गोली नहीं।" "कष्ट तो दिल्ली से ही था। यह सोच कर चल पड़ा कि जो होगा देखा जाएगा।"

" अब देखा जाएगा वाला वय नहीं है।" वह बोली। पता नहीं कि वह केवल मेरे वय के विषय में कह रही थी अथवा उसे अपने वय का भी ध्यान था। पिछले चालीस वर्षों में उसके वय में भी कोई वृद्धि हुई थी क्या ?

"अपने नगर में कुछ भी हो, घबराहट नहीं होती। परिवार के लोग, चिकित्सा-व्यवस्था, आस-पास के डॉक्टर .... सब कुछ होता है वहां।" मैं देख रहा था कि "अपने नगर" पर उसका बहुत बल था, जैसे अपना नगर न हो कोई विराट अस्पताल हो।

" मुझे आश्चर्य है कि मधु ने तुम्हें आने कैसे दिया?" सूर्या का प्रवचन चालू था।

" पूछा था मधु से।" मैंने कहा। " तो क्या बोली, चले जाओ?" सूर्या अभी भिड़ी ही हुई थी।

" भास्कर।" मैंने त्राहिमाम का नारा लगाया। "इस सखा-सखी संवाद में मैं क्या बोलूं।"

वह मेरे पक्ष में बोलता तो सूर्या सचमुच रुष्ट हो जाती; और उसके पक्ष में बोलने का अवकाश ही नहीं था।

" अस्वस्थ हूं। मुझे सांत्वना और सहानुभूति की आवश्यकता है।" मैंने कहा, " न बहस की न डांट की।"

" अब कुछ कहूं भी नहीं ?" वह झल्ला कर बोली। " बोलो, ज़रा प्यार से। डांटो मत।" " अच्छा प्यार से पूछ रही हूं, मधु ने क्या कहा।"

" उसने कहा, अपनी हिम्मत देखो। जा सको तो जाओ। नहीं तो मत जाओ।"

" एकदम ठीक कहा। उसकी जगह मैं होती तो मैं भी यही कहती।"

" ठीक है। मैंने अपनी हिम्मत देखी। तुम उसे देख नहीं पा रही हो।"

"ऐसी-तैसी हिम्मत की। अस्वस्थ थे तो आए क्यों ?"

"नहीं आता तो निरंकुश जी के लिए बड़ा संकट खड़ा हो जाता।" " अपना स्वास्थ्य अधिक महत्वपूर्ण है या निरंकुश जी ?" सूर्या कमर पर हाथ रख कर वीरांगना की मुद्रा में थी।

" न स्वास्थ्य, न निरंकुश जी। महत्वपूर्ण है अपना वचन। कमिटमेंट एक नैतिक बंधन है।"

" ऐसा कभी नहीं हुआ कि नरेन्द्र कमिट करके न आए हों। दूसरे विशिष्ट अतिथि तो नहीं आ रहे। नरेन्द्र भी नहीं आते तो निरंकुश जी को भी अंकुश लग जाता।" भास्कर बोला।

"दिल्ली से ही तबीयत खराब थी, तो चलना ही नहीं चाहिए था।" सूर्या कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थी, " तबीयत विमान में ही बिगड़ जाती या यहीं तुम अधिक बीमार पड़ जाओ तो क्या होगा, सोचो।"

" विमान में तो एयर होस्टेस थी। कोई दवा दे ही देती। यहां तुम हो पर तुम तो डांटे ही जा रही हो। डांट से कभी किसी का ज्वर उतरा है क्या ?" " मैं तुम्हारी सखी हूं, इसलिए अधिकार से डांट रही हूं।" पता नहीं सूर्या को मेरे स्वास्थ्य की अधिक चिंता थी या इस बात की कि कहीं मेरी देख-भाल का दायित्व उसपर न आ पड़े। वह मेरी अस्वस्थता से चिंतित थी या संभावित दायित्व से डर गई थी। वह इस प्रकार का कोई दायित्व स्वीकार नहीं करती थी।

"इनका काम निबटा लूं फिर अपनी तबीयत को देखूंगा।" मैंने कहा, " दूसरे मुख्य अतिथि आ नहीं रहे हैं। दोनों का काम मुझे ही संभालना है।"

" तुम भूल रही हो कि ये नरेन्द्र हैं, रामकथा के लेखक। 'प्रान जाहु बर बचन न जाई'।" भास्कर ने बातों की धारा बदलने का प्रयत्न किया।

और वह मेरी ओर मुड़ा, "अब आराम करो। कल बहुत स्ट्रेन पड़ने वाला है।"

"कुछ खा कर, सो जाऊं, तो कल तक ....।"

" क्या खाओगे अभी?" सूर्या ने पूछा।

" खाना क्या है, सूखा फ़ुल्का और सादी सब्जी।" मैं रुका, " और तुम्हारी डांट।"

" डांट तो कमरे में ही है। सूखा फुल्का भी यहीं मंगवा लो।" भास्कर ने कहा।

" हां। रेस्ट्रां में कौन जाएगा।" मैं उठ कर बिस्तर पर बैठ गया।

" चलो, नरेन्द्र को आराम करने दो।" भास्कर ने आदेश जारी कर दिया।

" दवा ले रहे हो न?" सूर्या ने पूछा।

" हां। दिल्ली एयरपोर्ट से ही स्वयं को ठेल रहा हूं।"

" फ़िर भी तुम आ गए।" सूर्या जैसे मुझे धिक्कार रही थी, " नहीं आना चाहिए था।"

" अब चलो भी।" भास्कर मुझे बचाने का प्रयत्न कर रहा था।

वे दोनों खड़े हो गए। मैं बिस्तर पर ही बैठा रहा।

वे चले गए और मैं सोचता रहा कि इतनी सारी चर्चा, इतनी आत्मीयता, इतनी संबद्धता दिखाने पर भी, सूर्या ने एक बार भी यह नहीं कहा कि चिंता मत करो, हम लोग यहां हैं और तुम्हारी आवश्यक देख-भाल कर सकते हैं। वह सिद्धांत बखानती रही, डांटती रही, अपना रोष प्रकट करती रही। ... और भास्कर

तो उसकी इच्छा के बिना कोई प्रस्ताव रख ही नहीं सकता था।

यह हमारा कैसा संबंध था ?

****

प्रात: अशोक जी का फोन आया, " कैसे हैं ?"

" कल से अच्छा हूं। रात बहुत बुरी नहीं थी। फिर भी ..." " मैं आपका नाश्ता ले कर आ रहा हूं। होटल का कुछ न ही खाएं तो अच्छा है।"

" अच्छी बात है। मैं नहा-धो लेता हूं। मुझे आधा घंटा दें।" " हां। इतना समय तो लग ही जाएगा।" मैं उठ कर स्नानागार में चला गया। पाचन-तंत्र भी कुछ संभल गया था और ज्वर भी कुछ कम ही लग रहा था। हां, शरीर में जान नहीं थी।

सोचा : नाश्ता कर सो जाऊंगा।

कमरे में मोबाइल बजता रहा। मैंने उसकी चिंता नहीं की। हो सकता है कि भास्कर का फोन हो। हो सकता है अशोक जी का हो। हो सकता है निरंकुश का हो। ... मैं चैन से नहा तो लूं। फोन का क्या है, उसका तो काम ही बजना है, फिर बज लेगा। नहीं तो मैं ही कर लूंगा।

नहा कर आया और बिस्तर पर बैठ गया। जब तक अशोक जी आते हैं, ध्यान का प्रयत्न करूं। दस एक मिनट में अशोक जी आ गए। वे साबूदाना और पोहा लाए थे।

" आप नाश्ता कर लें और सोने का प्रयत्न करें।" वे बोले, " मैं यहीं बैठा हूं। कोई आवश्यकता हो तो ... आपको संध्या तक ठीक होना ही है।" मैंने वैसा ही किया।

मुझे हल्का सा आभास हुआ कि किसी ने बिना खटखटाए, कपाट खोले हैं। मैंने आंखें नहीं खोलीं। अशोक जी बैठे थे। वे देख लेंगे।

" भास्कर जी।" अशोक जी का मंद स्वर सुनाई दिया। वे उठ कर खड़े हो गए।

“ कैसे हैं नरेन्द्र?” सूर्या ने पूछा। उसके स्वर में चिंता थी।

“ पहले से काफ़ी ठीक हैं।“ अशोक जी ने बताया।

“ अच्छा हुआ भैया कि आप यहां हैं।" भास्कर ने कहा, " चिंता हो रही थी कि जाने अब उनकी तबीयत कैसी है और कहीं शहर-बाहर के लोगों ने उन्हें घेर न रखा हो।“

“ नहीं ईश्वर की कृपा से अब तक कोई नहीं पहुंचा है। मैं उनके लिए सुबह का नाश्ता घर से बनवा कर लाया था। मुझे लगा कि इस हालत में होटल का खाना ठीक नहीं रहेगा।“

“ बहुत ही अच्छा किया आपने अशोकजी।“ सूर्या ने कृतज्ञता व्यक्त की।

“ अरे भाई जब हमारा यहां घर है, दो बेटियां हैं, तो क्यों वे बाहर का खाएं, यही सोचकर मैंने बनवा लिया था। अच्छा अब आपलोग आ ही गए हैं तो मैं निकलता हूं। मुझे लग रहा था कि आप लोग आएंगे।

बल्कि सच कहिए तो मैं इंतजार ही कर रहा था।“

“ठीक है भैया, आप घर जाइए। हम रहेंगे नरेन्द्र के पास।“

“ घर जाना इसलिए जरूरी है कि दोपहर का भोजन बनवा कर दे जाऊं। मुश्किल से घंटा भर लगेगा।“

“ हम भी उन्हें डिस्टर्ब नहीं करेंगे। रहा नहीं गया, इसीलिए चले आए। अब इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि आपके आने से उन्हें घर का बना नाश्ता मिला और भोजन भी मिलेगा। उन्हें निश्चय ही कुछ आराम लग रहा होगा, इसलिए नींद आ गई।“

“ मैं निकलता हूं।“ अशोक जी बोले।

“ निश्चिंत रहें, हम आपके आने तक यहीं हैं।" भास्कर ने कहा।

“ नीचे रिसेप्शन पर कह जाता हूं कि आयोजक के अलावे अन्य कोई भी मिलने आए तो मत भेजिए।"

“ बहुत अच्छा।" भास्कर ने कहा, " फिर भी कोई आ ही गया तो निपट लूंगा।"

“ निपटना क्या, सीधे बोल दूंगी कि उनकी तबीयत खराब है।" सूर्या ने कहा, " जिसे बुरा लगना है, लगे।"

मैंने आंखें खोल कर अशोक जी को देखा : वे जाते-जाते हाथ लहरा गए, " आता हूं।" अशोक जी निकल गए। भास्कर ने भीतर से कुंडी लगा ली। वे बिना कोई शब्द किए, मेरे निकट आए। मैंने भी अपना हाथ उठा कर उनका अभिवादन किया। " कैसे हो ?" सूर्या ने पूछा। " ठीक हूं।" मैंने आंखें खोल कर उन दोनों को देखा।

" शाम तक स्वस्थ होना आवश्यक है।" सूर्या ने कहा, " नहीं तो रघुकुल रीति टूट जाएगी।" " नरेन्द्र ठीक हों न हों, जब वे बोलने के लिए खड़े होंगे, तो अपनी बीमारी भूलकर धाराप्रवाह बोलेंगे। बाद में जो हो सो हो। " भास्कर ने कहा।

" तबीयत कैसी है?’ सूर्या ने निकट आकर, मेरे माथे पर हाथ रखा।

" ठीक हूं।" मैंने कहा और बिस्तर में अधलेटा सा हो गया।

"उठो मत।" सूर्या बोली।

"उठ नहीं रहा; किंतु लेटना भी अच्छा नहीं लग रहा।" मैंने कहा, "तुम लोग बैठो।"

मेरा स्वर पहले जैसा मंद नहीं था।

" कुछ खाएंगे ? क्या मंगवा दूं?" भास्कर ने औपचारिकता निभाई।

" कुछ नहीं। खाना अशोक जी घर से लाएंगे।"

" वही ठीक रहेगा।" सूर्या ने कहा।

"हम कुछ लाते तो होटल का ही होता।" सूर्या ने अपना बचाव करते हुए कहा। वह मेरे और निकट आ गई, " शाम को कैसे बोलोगे नरेन्द्र?"

उसकी चिंता बनी हुई थी।

" इसका उत्तर तो मंच पर पहुंच कर ही मिलेगा।"

" आप जो भी बोलेंगे, जैसा भी बोलेंगे, वह श्रोताओं के लिए उपहार होगा।" भास्कर ने कहा।

" कई बार ऐसा होता है," मैं कुछ और आराम से बैठ गया, " सोचकर कुछ और जाता हूं, बोलता कुछ और हूं।" " यह कैसे ?" भास्कर ने पूछा।

" आरंभिक वक्ता मुझे उत्तेजित कर देते हैं। उनके तर्कों का खंडन-मंडन आवश्यक हो जाता है। उसी में सारा समय निकल जाता है।"

" उससे चर्चा सजीव हो उठती है।"

" संभवत:।" मैंने कहा।

घंटी फिर बजी।

अशोक जी दोपहर का भोजन ले आए थे।

"अच्छा आपलोग यहीं हैं।" वे बोले, " मुझे देर होने लगी तो लगा कि कहीं आप भी भोजन के न निकल गए हों।"

"कैसे निकल जाते।" सूर्या का स्वर दृढ़ था।

"अब निकल सकते हैं।" मैंने उठते हुए कहा।

" प्रबंधकों में से कोई आया?" अशोक जी ने पूछा।

" नहीं। अच्छा ही हुआ। आते तो भीड़ ले कर आते। नरेन्द्र को विश्राम दरकार था।" भास्कर ने कहा।

"कल जब यहां से लौट रहा था तो रास्ते में अपने होमियोपैथ का क्लीनिक खुला हुआ देखा। कुछ दवा ले ली थी और प्रात: खिला दी थी।" अशोक जी बोले, " शायद कोई लाभ हुआ हो।"

" जो डाक्टर, तुम्हारे साथ आया था, वह भी कुछ दे गया था। बारी-बारी से सब खाए जा रहा हूं ताकि सूर्या की चिंता दूर हो।" " अपनी चिंता नहीं, मेरी चिंता ...।" सूर्या भड़की। " मैं चिंतित नहीं, अस्वस्थ हूं।" मैंने कहा] ^^ तुम चिंतित हो। पता नहीं चिंतित व्यक्ति को स्वस्थ मानेंगे या नहीं।"

" क्या परिहास है।" अशोक जी बोले।

****

हॉल प्राय: भरा हुआ था। लोग भी थे और लोगों का कोलाहल भी। लोग अपने परिचितों से मिल कर अपनी प्रसन्नता कम जता रहे थे, शोर अधिक मचा रहे थे। शायद अधिक शोर ही उनके लिए अधिक

प्रसन्नता का प्रमाण था। दर्शक दुखी थे कि कार्यक्रम आरंभ क्यों नहीं हो रहा और प्रसन्न थे कि उन्हें अपने मित्रों से मिलने-जुलने का समय मिल रहा था। मंच पर भी कार्यकर्ताओं का बवंडर था। संस्था के "संरक्षक" महोदय भी पहुंच गए थे। "संरक्षक" का जो अर्थ मेरे अनुभव के शब्दकोश में है, वह है वह व्यक्ति जो संस्था के लिए कोई काम न करता हो और संस्था उसके लिए पलक-पांवड़े बिछाए रखती हो। उसे बोझ न कह कर "संरक्षक" कहा जाता है।

" मुझे नरेन्द्र जी की चिंता अधिक है।" अशोक जी भास्कर से कह रहे थे, " वे किसी भी प्रकार बोल लें, तो उन्हें आराम करने होटल पहुंचा दिया जाए।"

" मैं जरा मंच की व्यवस्था देख लूं।" ये निरंकुश थे।

कुछ ही देर में उद्घोषणा होने लगी कि अतिथियों को सादर मंच पर लाया जाए।

एक-एक कर सभी प्रमुख वृद्ध जनों को मंच पर सजा दिया गया।

मुख्य अतिथि और प्रमुख वक्ता के रूप में मुझे आवाज़ दी गई। सभागृह में तालियां बजने लगीं। लगा लोग मेरे नाम से परिचित हैं; या कदाचित वे कार्यक्रम के आरंभ होने की प्रसन्नता में तालियां बजा रहे थे।

उद्घोषिका ने रेखांकित कर कहा, नरेन्द्र जी को इसी वर्ष पद्मश्री सम्मान से भारत सरकार ने "नवाज़ा" है। इस घोषणा पर हॉल में फिर तालियों का ज्वार उठा। लोग मुझ से अधिक पद्मश्री को पहचानते थे। मेरा स्वास्थ्य अभी सुधार की प्रक्रिया में था। सुधरा नहीं था। इसलिए जो आजतक नहीं हुआ था, मुझे वह भी सहन करना पड़ा। मुझे सहारा देने के लिए तीन-चार लोग लगे, और मंच की ऊंचाई तक पहुंचाया गया।

मुझे अटपटा लग रहा था। मैं जो प्राय: इतनी ऊंचाई तक टाप कर पहुंच जाता था और सीढ़ियां होते हुए भी मंच से सीधे नीचे कूद जाता था आज एक बीमार बूढ़े के समान मंच पर बैठाया गया था।

अपने स्थान पर नरेन्द्र कोहली नाम से एक वृद्ध बीमार को बैठा देख मैं प्रसन्न नहीं हुआ ;किंतु कोई विकल्प नहीं था। भय तो यह था कि कहीं यह अस्वस्थ बूढ़ा सदा के लिए मेरा नाम और मेरा स्थान न ले ले। ऐसे में मन कुछ उद्वेलित भी था। बोलने के लिए जो स्वर मेरे कंठ से निकल रहा था, वह मेरा नहीं था। जाने मेरे कंठ में कौन आ कर बैठ गया था। उसपर यह रूपगर्विता उद्घोषिका फिर से कह रही थी, "उन्हें इस वर्ष पद्मश्री से नवाजा गया है।" प्रेक्षागृह में पुन: तालियां बजीं। और मेरे भीतर का वह स्वाभिमानी नरेन्द्र कोहली तड़प उठा। " आप कौन होते हैं, मुझे नवाज़ने वाले।" मेरे स्वर में रोष था। मैं समझ रहा था कि मैं बहुत संतुलित नहीं हूं। पर मैं क्या करता। वह मुझे "नवाज़ने" की चर्चा कर रही थी और बार-बार कर रही थी। उन्हें इस शब्द का अर्थ मालूम नहीं था। पर शायद यह शब्द उन्हें अधिक लुभावना लगता था, क्योंकि वे उसका अर्थ नहीं जानते थे। बिना अर्थ और संदर्भ जाने भी वे फारसी, अरबी और तुर्की के शब्दों का गलत प्रयोग करते हैं, गलत उच्चारण करते हैं ; और स्वयं को महान् समझते हैं।

मेरे स्थान पर जो अस्वस्थ बूढ़ा वहां बैठा था, वह बहुत विचलित था। वह बोला, " नवाज़ने वाला केवल ईश्वर है। वही "गरीबनवाज़" है। आप ईश्वर नहीं हैं, न भारत सरकार ईश्वर है। आप दोनों ही मुझे या

किसी को भी नवाज़ नहीं सकते। भारत सरकार ने मुझे अलंकृत किया है, विभूषित किया है। हमारे पास फारसी, अरबी और तुर्की शब्दों के लिए हिंदी के सुन्दर और मधुर शब्द हैं, अपनी पूरी अर्थवत्ता के साथ। तो क्यों हम उनका व्यवहार नहीं करते। मानसिक दासता के कारण ? यही बात अंग्रेजी के शब्दों के साथ भी है।" मुझे लगा कि मेरे नाम से वहां बैठा वह वृद्ध अपने आवेश से ही हांफ गया था। रांची की वह लोकप्रिय सुंदरी उद्घोषिका अपने-आप को कोस रही होगी। उसने शायद किसी को स्वयं से इस प्रकार रुष्ट होते भी नहीं देखा होगा। आखिर एक शब्द ही तो था। उसपर इतना शोर मचाने की क्या आवश्यकता थी। मैं तो जानता ही हूं, मेरे नाम से मंच पर बैठा वह वृद्ध भी जानता था कि लोग शब्दों को इतनी सूक्ष्मता से न जांचते थे, न छानते थे। उनकी समझ में ही नहीं आता था कि वे क्या भूल कर बैठे। वे 'प्रयोग', 'उपयोग' और 'व्यवहार' तीनों शब्दों को पर्याय मानते थे। वे विरोध को 'खिलाफत' कहते थे और नहीं जानते थे कि खिलाफत, वस्तुत: मुसलमानों के धार्मिक राजा और धर्म गुरु 'खलीफा' के शासन को कहा जाता है।

अब मुझे आगे बढ़ना था। मैंने सुना, वह वृद्ध कह रहा था, " अपनी भाषा से इस प्रकार अनभिज्ञ रहने का अर्थ है कि आप अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपने देश से प्रेम नहीं करते। उससे प्रेम किए बिना तो आप अपने देश और राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकते। आपने रामकथा पढ़ी और सुनी होगी। उसे गुनने का भी प्रयत्न करें। उसका मर्म पहचानें। हम एक साहित्यक उत्सव में बैठे हैं। सब साहित्यकार हैं। बुद्धिजीवी हैं। मनीषी हैं। अब लौट जाइए वाल्मीकि के पास। वे भी कवि थे, ऋषि अथवा बुद्धिजीवी थे, राम की राष्ट्रभक्ति को पहचानने वाले मनीषी थे। यह ऋषियों ने राम को बताया था कि भारत को कहां-कहां से खंडित करने का प्रयत्न चल रहा है। सम्राटों को पता नहीं था और ताड़का के माध्यम से रावण इस देश को अवध और मिथिला के बीच से तोड़ रहा था। वह शरभंग के आश्रम में इस देश की संस्कृति को खा कर उसकी अस्थियां जमा कर रहा था। वह गोदावरी को आधार बना कर, शूर्पणखा के माध्यम से भारत को उत्तर और दक्षिण में बांट रहा था। लंका को आर्यावर्त्त से पृथक् कर ही दिया गया था। उधर अगस्त्य के सामने विंध्याचल भारत दो भागों में बांट रहा था। ऋषियों ने बताया कि इस देश से प्रेम करने वालों को अपने शत्रुओं को पहचानना है। उनसे लोहा लेना है। अहिंसा हमारा धर्म अवश्य है किंतु देश की रक्षा भी हमारा धर्म है। धर्म हमें दुर्बल नहीं करता। वह हमारी शक्ति है। अधर्म से लड़ना भी हमारा धर्म है। शत्रु को पहचान कर उसके घर में घुस कर उसे मारना भी हमारा धर्म है।...." मेरे नाम से मंच पर बैठा वह वृद्ध रामकथा से महाभारत में चला गया। वहां से भगवद्गीता में। वहां से कर्म सिद्धांत में, जन्मांतरवाद में। और जाने कहां-कहां से भटका कर श्रोताओं को वापस प्रेक्षाग्रह में ले आया।

मैं थक गया था। अशोक जी को संकेत किया, " यहां लंबा कार्यक्रम है। मुझे होटल में ले चलिए।" वे दो-एक लोगों की सहायता से मुझे बाहर ले आए। भीड़ लगी हुई थी। मेरे मित्रों-परिचितों को यह आशा नहीं थी कि मैं संक्षिप्त सा भाषण कर इस प्रकार उठ कर चल दूंगा। इसलिए सब भागते हुए आए। आज उस भीड़ में से ऋता शुक्ल का चेहरा ही स्मरण है, " क्या हुआ भैया। बहुत अस्वस्थ हैं। ज्वर है क्या ?"

" नहीं। बुढ़ापा है।" मैंने मुस्कराने का प्रयत्न किया, पर वह हुआ नहीं। " आप गाड़ी में बैठिए।" ऋता ने कहा, " आपका स्वास्थ्य एकदम्मे ठीक नहीं लग रहा।"

पीछे भास्कर और सूर्या भी दिखाई दिए; किंतु कोई बात करने का अवसर नहीं था।

" भास्कर और सूर्या के जाने की व्यवस्था भी कर दें।" मैंने कहा।

लोग आश्वस्त कर रहे थे, "आप चिंता न करें। उन्हें पहुंचाने की जिम्मेदारी हमारी है।" " आप बैठिए।"

अशोक जी एक प्रकार से मेरा अपहरण कर ले आए।

*****

होटल में लाकर अशोक जी ने डाक्टर की पुड़िया खिला दी। " आप विश्राम करें, मैं आपके लिए भोजन लेकर अभी आता हूं।" अशोक जी ने कहा, " आशा है तब तक भास्कर जी भी आ जाएंगे।" वे चले गए और मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं। थोड़ी ही देर में कपाट खुले और भास्कर तथा सूर्या के आने की आहट मिली।

मैंने आंखें खोल दीं किंतु उठा नहीं। " अशोक जी चले गए ?" सूर्या ने पूछा। " भोजन लेने गए हैं।" "अच्छा किया, आप आ गए।" भास्कर ने मुझ से कहा, " आपके जाते ही हॉल लगभग आधा खाली हो गया था। पीछे वे ही लोग रह गए थे, जिन्हें पुरस्कृत या सम्मानित होना था।" " मैंने पहली बार तुम्हें अपने व्याख्यान को अपनी नाराज़गी से आरंभ करते हुए सुना।" सूर्या ने कहा।

"वह बेचारी उद्घोषिका पानी-पानी हो रही थी। उसने कल्पना भी नहीं की होगी कि कोई इस तरह उसके शब्दों के दुरुपयोग पर उसे सरेआम फटकार लगाएगा।" भास्कर ने कहा।

" कौन लाया तुम्हें ?" " ये डॉक्टर साहब।" मैंने पहली बार देखा, उनके साथ एक तीसरा व्यक्ति भी था। यही डॉक्टर कल से उनकी सेवा कर रहा था। " हमने इनसे कहा तो इन्होंने कहा कि जैसे ही इनको इनका प्रशस्तिपत्र मिल जाएगा, ये हमें लेकर चल पड़ेंगे।"

भास्कर ने उसे यहां रोक लिया था ताकि वह उन्हें गेस्ट हाउस तक भी पहुंचा दे। " कल फ्लाइट कितने बजे की है ?" सूर्या ने पूछा। " संदेश आया है कि मेरी कल की दिल्ली की उड़ान स्थगित कर दी गई है।"

" तब ?" वे चौंके।

" तब क्या, दूसरी कोई उडान।" मैंने कहा, "उसकी व्यवस्था करनी होगी। एयर लाईन वाले अपने-आप तो यह कार्य करने से रहे।"

" तो ?"

" सभी घरेलू उडानों की यही स्थिति है।" मैंने अपनी चिंता व्यक्त की।

"व्यवस्था हो ही जाएगी।" डॉक्टर ने कहा।

" ठीक है। लेकिन दूसरी उड़ान कब की है, उसमें जगह होगी या नहीं।" मेरी चिंता बढ़ती जा रही थी।

डॉक्टर व्यवस्था करने में लग गए। कितने ही लोगों को फोन किया। पर बात बनी नहीं।

"संस्था अपनी पचासवीं वर्षगांठ मना रही है और इधर नरेन्द्र की उन्हें चिंता ही नहीं है।" भास्कर ने कहा, "अब यह टिकट।"

" तुमको नहीं आना चाहिए था नरेन्द्र ।" सूर्या के प्रवचन का पुनरारंभ हो गया, " वे तुम्हारी जगह किसी को भी बैठाते। आदमी को पहले अपनी चिंता करनी चाहिए। अब फ़्लाईट कैंसल हो गई है और उन्हें पता ही नहीं है।"

उसका प्रवचन रोष में परिणत हो गया। संस्था के प्रतिनिधि के रूप में डॉक्टर प्रयत्न करता रहा ; पर मैं जानता था कि यह काम सुनील बादल ही कर पाएंगे। टिकट उन्होंने ही बुक की थी ।

" एक फ़्लाईट दिल्ली के लिए शाम को भी है।" डॉक्टर बताया।

" एक व्यक्ति तुम्हारे साथ लगाए रखना चाहिए था।" सूर्या अब भी अपना मोर्चा संभाले हुए थी।

" वे लोग अशोक जी के भरोसे हैं।" भास्कर शायद सूर्या को समझाने का प्रयत्न कर रहा था।

और तभी अशोक जी कमरे में प्रकट हो गए।

"अच्छा हुआ, आप लोग आ गए। मैं जरा चिंतित था।"

" ठीक है। पर नरेन्द्र की फ़्लाईट कैंसल हो गई है। उसका क्या होगा?" सूर्या ने तोप का मुंह अशोक जी की ओर फेर दिया।

" ऐसा! यह कब हुआ?"

" आपके जाने के बाद ही मेरे मोबाईल पर संदेश आ गया था।" मैंने बताया।

" उसकी आप अधिक चिंता न करें। व्यवस्था हो ही जाएगी।" अशोक जी बोले, "पहले आप गरम खाना खा लें।" फिर वे डाक्टर की ओर मुड़े, " टिकट किसने कराया था?"

" शायद आकाशवाणी वाले सुनील जी ने।"

"उनकी पहुंच सभी जगह है। मैं फ़ोन करता हूं।"

" मैं कर रहा हूं, पर कनैक्ट नहीं हो रहा।" डॉक्टर ने बताया।

" वे मंच पर फंसे होंगे।" अशोक जी ने कहा।

"सुनील को सूचना नहीं है। प्रात: दस बजे की फ़्लाईट है। होटल से साढ़े आठ बजे तक निकल जाना होगा। समय ही कहां है, अन्य फ़्लाईट देखने का।" मैं अपनी घबराहट में कह गया।

" नरेन्द्र तुम खाना खाओ। हममें से कोई इस समस्या का समाधान नहीं कर सकता।" सूर्या ने फतवा जारी कर दिया।

उसने अशोक जी का टिफ़िन-बॉक्स खोलकर मेज़ पर लगा दिया और मुझे हाथ से संकेत किया।

मैं खाने बैठ गया; किंतु खाना भी कठिन हो रहा था।

" अशोकजी आपने बहुत ही अच्छा काम किया कि नरेन्द्र को घर का खाना खिला रहे हैं, नहीं तो तबीयत और बिगड़ जाती।" इस बार सूर्या का स्वर मृदु और मधुर था।

" दो बेटियां हैं यहां और सपरिवार हैं, इतना भर तो किया ही जा सकता है।" अशोक जी ने कहा।

" आप तो कल से ही नरेन्द्र की सेवा में लगे हुए हैं। मैं नतमस्तक हूं।" भास्कर ने जैसे मेरी ओर से कृतज्ञता व्यक्त की, "आज भी मुख्य कार्यक्रम छोडकर चले आए।"

" कार्यक्रम तो होते रहेंगे। नरेन्द्र जी कब-कब आते हैं। देखो ऐसी तबीयत में भी चले आए।" वे बोले।

" अब ठीक हो जाएंगे। कल जो दवा मैंने दी है, वह इन सबको कंट्रोल में रखेगी।" डॉक्टर ने कहा।

मैं चुपचाप खाता रहा। सूर्या वहीं मेरे पास ही बैठ गई।

" आप लोग चलिए ताकि डॉक्टर साहब भी फ्री हो जाएं और आपलोगों को भी मेस में खाना मिल जाए।" अशोक जी बोले।

" चलो फिर।" भास्कर ने सूर्या से कहा, " डाक्टर साहब को भी तो घर जाना है।"

" ठीक है नरेन्द्र, हम निकलें।" सूर्या खड़ी हो गई।

" हां, तुमलोग चलो। बाद में परेशानी न हो।" मैंने कहा।

****

मैंने भोजन कर, बरतन समेट दिए। मैं चाहता था कि बरतन धो दूं, किंतु अशोक जी ने करने नहीं दिया।

तभी उनका फोन बजा।

"हां भास्करजी। पहुंच गए?" उन्होंने पूछा।

वे कमरे से बाहर चले गए। फोन निबटा कर आए। " भास्कर जी थे।" अशोक जी ने बताया, " कह रहे थे कि आप तो घर चले जाएंगे, मैं रात को नरेन्द्र जी के साथ रुक जाऊं क्या। मैंने पूछा, ' फिर क्यों आइएगा वहां से।' बोले, 'अकेला ही आऊंगा। पहले सूझ जाता तो वहीं रुक जाता। सूर्या को डॉक्टर यहां छोड़ ही जाता।'" " तो आप ने क्या कहा ?" मैंने पूछा। " मना कर दिया। वे नहीं जानते कि गेस्ट हाउस में कैसे-कैसे लोग आते हैं। सूर्या को वहां अकेली छोड़ना समझदारी नहीं है। यहां आवश्यकता नहीं है। होगी तो मैं रात को यहीं रुक जाऊंगा।"

" मैं अब सो जाऊंगा।" मैंने कहा, " रात को किसी की आवश्यकता नहीं होगी।"

" वे बता रहे थे कि सूर्या कह रही हैं कि नरेन्द्र जी का स्वास्थ्य बिगड़ा तो हम लोग उन्हें टैक्सी से अपने घर जमशेदपुर ले जाएंगे। होटल में पड़े रहना ठीक नहीं है।" मैं चकित था कि यह प्रस्ताव सूर्या की ओर से आया था। विश्वास नहीं हो रहा था। यह तो उसके स्वभाव में नहीं था। क्या वह मन से कह रही थी ऐसा ? " तो आपने क्या कहा ?" " मैंने कहा कि घर तो मेरा भी है और रांची में ही है। यहां अस्पताल भी

हैं। जमशेदपुर जा कर क्या करेंगे। और फिर रांची से दिल्ली जाना सुविधाजनक है। जमशेदपुर से न कोई ढंग की गाड़ी है, न फलाइट ही।"

****

प्रात: उठा तो अच्छा लग रहा था। अशोक जी के आने से पहले नहा-धो लूं।

पीछे कमरे में फोन पागलों के समान रोता रहा। भास्कर ही होगा, इस समय। ... कोई भी हो, नहाने के बीच .... कमरे में लौटा तो फोन रो-रो कर चुप हो गया था। छूटी कॉल के रूप में भास्कर का ही नंबर था। मैंने फोन मिलाया। " अरे कहां थे ?" वह बोला, " मैं फोन कर कर के हैरान हो गया।" " नहा रहा था। तुम्हारा फोन मुझे कमरे में न पा कर लौट गया। शर्मीला है, नहीं तो स्नानागार में भी झांक लेता। मैंने नहा कर देखा कि तुम्हारी छूटी कॉल है।"

" अब तबीयत कैसी है ?"

" कल से काफ़ी सुधार है।" मैंने कहा।

"अभी अकेले हैं, या कोई साथ है?"

" अकेला ही हूं।" मैंने कहा, " भास्कर इतना संदेह तो मेरी पत्नी भी नहीं करती।" वह हंसा, " मैं किसी लड़की के विषय में नहीं पूछ रहा हूं। अशोक जी ..." " शाय़द थोड़ी देर में अशोक जी आएं।"

वह शुरु हो गया " मैंने फोन किया था। घंटी देर बजती रही। मैं चिंतित हो गया। मन आकाश पाताल एक करने में लग गया। कहीं तबीयत बिगड़ न गई हो। ... अशोक जी अपने घर न ले गए हों। .... कहीं अस्पताल में तो भरती नहीं कराना पड़ गया।..."

यह भास्करीय शैली थी।

" यह तो नहीं सोचा न कि रात में नीन्द में ही हार्टफेल हो गया।" मैंने कुछ खीझ कर कहा, " अरे भाई, मैं कहीं भी होता, मेरा फोन तो मेरे पास ही होता न।" वह मेरी चिंता न कर अपनी राह पर चलता ही गया, ".. सूर्या से कहूं तो यही कहेगी कि इतनी दूर-दूर तक सोचने और आशंकित होने की आवश्यकता नहीं है। वह समझती है कि चिंता का अधिकार केवल उसी को है। ... और तुम तो उसके स्वत्व के घेरे में हो।"

" ईर्ष्या हो रही है ?" " अरे नहीं। उसे बहुत पीछे छोड़ आया हूं। ईर्ष्या के साथ इतने वर्ष जी नहीं सकता था। एक सूर्या ही काफी है।" वह बोला, " सूर्या ने पूछा, 'फ़ोन नहीं लग रहा?' ' हां। नरेन्द्र को कर रहा था।' 'जानती हूं, अपनी अम्मा को तो नहीं कर रहे। थोड़ी प्रतीक्षा कर लो और फिर अशोक जी को करो।' "

मुझे इस सारे ब्योरे की आवश्यकता नहीं थी, किंतु बताए बिना उसे चैन कहां से आता। वह बताता रहा, " मैंने सूर्या को बताया कि मन में चिंता बनी हुई है। सोच रहा हूं कि जल्दी से जाकर नरेन्द्र को देख आऊं। फ़्लाइट वाला मामला क्या हुआ, यह भी जान लूं।"

"अब जो भी बताना है, सूर्या को बता दो।"

" कल आयोजकों में से कोई मिलने आया था क्या?"

" कोई नहीं। यही होता है।" मैंने कहा, "कर्यक्रम से पहले वे आपके पीछे और कार्यक्रम के बाद आप उनके पीछे।"

" सोचता हूं कि रांची में अशोक जी न होते तो क्या होता?" भास्कर ने चिंता व्यक्त की।

" अशोक जी न होते तो राम जी होते। वैसे भी वे राम जी ही हैं, अशोक जी के रूप में।"

" अरे हां फलाइट का क्या हुआ?"

" ठीक हो गया। सुनील बादल ने नई टिकट भिजवा दी है।"

" चलिए, अच्छा हुआ। दूसरी टिकट कब की है ?"

" आज दोपहर दो बजे की उडान है।"

" हमें भी घंटे भर में यहां से निकलना है।" उसने कहा, " सुबह जमशेदपुर के लिए, अच्छी बस है।"
" ठीक है निकलो।" मैंने कहा।

" जाने से पहले आपके पास आएं?" उसने पूछा।

" अरे नहीं भाई, कोई आवश्यकता नहीं है।" मैंने कहा, " सीधे बस-अड्डे पहुंचो।"

" कोई तो आएगा ही आपको एयरपोर्ट पहुंचाने?" उसने कहा।

"देखो। कोई आया तो ठीक, नहीं तो टैक्सी। लौटती हुई बरात वैसे भी चवन्नी की होती है।"

" अशोक जी तो आएंगे ही।"

" हां, वे आ रहे होंगे।"

"ठीक है, शाम को बात होगी। हमारे जमशेदपुर और आपके दिल्ली पहुंचने पर।"

****

बात शाम को नहीं हुई। अगले दिन हुई।

" तबीयत कैसी है?"

" बिस्तर पर हूं।" मैंने बताया।

" अरे, क्या और बिगड़ गई?"

मन हुआ कि कहूं कि वह कोई पत्नी है कि और बिगड़ जाए, किंतु कहा, " थोड़ी बहुत तो बिगडनी ही थी। पिछली बीमारी का शेषांश, जोड़ यात्रा की थकान। योगफल क्या हुआ ?"

" मालूम नहीं। गणित में सदा ही कमज़ोर रहा हूं।" वह बोला, "डाक्टर को दिखाया?"

“ वही वायरल। उससे जुड़ा और कुछ-कुछ।" मैंने बताया।

“ दवा चल रही है?"

“ बस दवा ही चल रही है बाकी सब कुछ ठहरा हुआ है।" मैंने कहा।

"फिर भी नरेन्द्र, आप अपने घर में हैं।"

पति-पत्नी दोनों के लिए यह पहला प्वाईंट था। घर और परदेस।

“ हां। पर जानते हो, कलकत्ता में रहते हुए भी विवेकानन्द ने गाया था : घर चलो मन, घर चलो। तुम दोनों भी रांची में यही गा रहे थे किंतु दोनों के घर अलग-अलग हैं।"

“ चलिए किसी एक घर तो पहुंचे।' भास्कर ने कहा, "परसों निरंकुशजी तो आए ही होंगे आपसे मिलने और आपको विदा करने?"

“नहीं, कोई नहीं फ़टका, सिवाय एक अशोक प्रियदर्शी के। उन्हें तो आना ही था, नाश्ता लेकर।" "फिर ?" "वे मेरे पास ही रुक गए। मेरे भोजन की व्यवस्था की और मेरे साथ विमानपत्तन तक आए।"

“ आश्चर्य है, संस्था का कोई प्रतिनिधि नहीं आया। एयरपोर्ट कैसे गए? टैक्सी ?"

" नहीं। उसका भी एक किस्सा है।"

“ कैसा किस्सा?" भास्कर ने पूछा। कथाकार कोई किस्सा कैसे छोड़ देता।

" परसों प्रात: एक साहित्य-प्रेमी मुझे प्रणाम करने आया। वह धनबाद का था। उसे संस्थावालों ने सम्मानित करने के लिए आमंत्रित किया था। वह बड़े उत्साह से आ गया, किंतु बेचारे का नाम ही नहीं पुकारा गया। वह बैठा का बैठा रह गया, साक्षात् प्रतीक्षा बन कर।"

" यह तो अपमान करना हुआ।"

" हां दुखी था। अपनी गाड़ी से आया था। एक दिन पहले से अपना काम-धंधा छोड़कर, रांची के किसी होटल में टिका हुआ था।" "बुरी बात।"

"हां बात तो बुरी है।" मैंने बताया, " उसे निरंकुश से पूछना अच्छा नहीं लगा। बता रहा था कि कार्यक्रम में सबसे पहले पहुंचा था और सबसे अंत में उठा था।"

" फिर ?" "एयरपोर्ट जाने का समय हो चला था। अशोक जी ने उसी दुखी आत्मा से कहा कि नरेन्द्र जी को विमानपत्तन पहुंच कर ही प्रणाम करना। दोनों काम हो जाएंगे।" " तो उसीने पहुंचाया ?" भास्कर ने पूछा।

" हां। पहुंचाया। चरण स्पर्श कर श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और धन्य हुआ।"

" फिर धनबाद लौट गया ?"

" कह तो यही रहा था। मेरा विचार है कि अशोक जी को नगर में कहीं पहुंचा कर वह निरंकुश को गालियां देता हुआ, धनबाद लौट गया होगा।"

" हे ईश्वर, कैसे अपमानित हुआ बेचारा।" भास्कर ने कहा।

" वह प्रसन्न था कि मैं उसे होटल में ही मिल गया और वह मेरा आशीर्वाद पा कर धन्य हुआ।" " दुखी था, किंतु सज्जन था।" भास्कर ने कहा, " तो निरंकुश एंड कंपनी नहीं ही आई आपको विदा करने ?"

" नहीं। हां अशोकजी को विमानपत्तन से लौटते हुए फ़ोन अवश्य आया था।" मैंने बताया, "अशोक जी भी उस निरंकुश को अंकुश नहीं लगा सके।"

वैसे विदा करने के लिए न आना मेरे लिए नया नहीं था। एक बार जोधपुर में भी मेरे साथ यही हुआ था और जबलपुर में भी। महत्वपूर्ण यह है कि उन लोगों ने कभी अपने न आने का कारण भी नहीं बताया, और न कभी उसके लिए खेद व्यक्त किया। पर मेरा समाज तो वही था न।'

❐❐❐

1. नरेंद्र कोहली, 175 वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली 110034

बीज

– महावीर राजी

राष्ट्रगीत में भला कौन वह भारत भाग्य विधाता है,
फटा सुथन्ना पहने जिसके गुण हरचरना गाता है

दस बज गए थे और अब मंदिर वीरान होने लगा था।

भगवान चंद्रचूड़ का विख्यात मंदिर ! पार्श्व में दामोदर नदी का घाट ! सुबह के वक्त पुण्यार्थियों का मेला लगा रहता है यहाँ। पचासेक सीढियां चढ़ कर बड़ा सा प्रांगण बना है जिसके बीचोंबीच स्थापित है भगवान का भव्य मंदिर। सबसे निचली सीढ़ी मानो एल ओ सी (लाइन ऑफ कंट्रोल) थी, जिसके ऊपर जाना मंदिर कमिटी की ओर से उन जैसे आवारा भिखारियों के लिए निषिद्ध !

लगभग आठ साल की उम्र थी उसकी। खस्ता हाल पेंट ! बेडौल शर्ट ! मोच खाया कटोरा ! उसके जैसे दसियों नमूने मंदिर प्रांगण में भीख मांगते मंडराया करते।

मंदिर में भीड़ अब कम हो चुकी थी। उसने जेब से भीतर की जमा पूंजी निकाली - चार टाका आठ आना ! बस्स ! का होगा इतना में..? चार टाका आठ आना पेट मे जाएगा तो जो भूख अभी सिंग-पूंछ समेटे शांत बैठी है, कुत्ते की तरह भौंकती दुर्दुराती उठ खड़ी हो जाएगी..। फिर का करेगा वह ?

मंदिर को अलविदा कहकर बाहर निकलना चाह ही रहा था कि सामने से सिंहानियाजी तेज तेज कदमों से भीतर आते दिखे। सिंहानिया जी के हाथ मे रोज जी तरह लोटा था जिससे दूध की बूंदें बाहर छलक रहीं थीं। ननकू की आंखों में एक चमक कौंधी और लपक कर सिंहानिया जी के साथ कदम से कदम मिला कर चलने लगा -'साब, कुछ भीख मिल जाय ! भोत भूखा हैं।',

चल आगे बढ़ छोकरे, पहले ही बाहर देर हो चुकी।' सिंहानिया जी ने मुंह बिचकाया।

'दया करो साबजी, सच में भोत भूखा..!'

बोला न माफ करो, सुना नहीं ?' वही झिड़कींनुमा फटकार ! सिंहानिया जी सीढियां चढ़ने लगे। ननकू थम गया -सीढ़ियां यानी

तभी सिंहानिया जी आते दिखे। रोज की तरह दूध का लोटा लिए। तेज तेज चलने से दूध की बूंदें लोटे से बाहर छलक रही थीं। दूध की बूंदों पर नजर जाते ही ननकू की आंखों में सैकड़ों जुगनुओं की चमक सिमट आयी। वह उनकी ओर लपका -' सर, भोत भूख लगी। रात से कुछ नहीं खाया। दो टाका दे दो सर।

एलओसी ! निषेधपथ ! ननकू को पता था कि सिंहानिया जी के साथ संबाद का यही अंत होगा। सिंहानिया जी रोज ही मंदिर आया करते हैं। हाथ मे दूध से भरा लोटा होता है - भगवान के अभिषेक के लिए ताजा गाढ़ा दूध ! रोज ही भीख की गुहार होती। रोज ही हिकारत भारी दुत्कार भी ! सिंहानिया जी 'शिव शिव ' उच्चारते सीढियां चढ़ जाते और वह दौड़ कर मंदिर के पिछवाड़े आ जाता। थोड़ी देर में ही पिछवाड़े की दीवाल से लगे सीवर पाइप के मुंह से गाढ़ा दूध टपकने लगता - टप टप !

आज वह पिछवाड़े की दीवाल की ओर न जाकर बाहर निकल आया। देर तक इधर उधर भटकता रहा। जमा पूंजी में डेढ़ टाका की बढ़ोतरी हुई..बस ! एक बजे गया। ननकू रौ में चलता मेन मार्किट की किराना पट्टी में आ गया। किराना मंडी का भीड़ भाड़ वाला व्यस्त क्षेत्र ! दोनों ओर ऊंची ऊंची दुकानें व गद्दियां ! विभिन्न तरह के अनाजों की खरीद फरोख्त पूरे शबाब पर थी। ट्रकों पर माल लद रहे थे। दुकानों की कतारों में सिंहानियाजी की भी गद्दी थी। गद्दी पर सिंहानियाजी विराजमान थे। कलफदार फनफनाता कुर्ता और धोती। ललाट पर चंदन का तिलक ! अनायास ही ननकू की नजर उनकी नजर से मिल गयी। उसके पाँव ठमक गए। मंदिर में सेठजी दूसरे मूड में रहा करते हैं। इस वक्त शांत और हँसमुख तो हैं ही, नोटों से भरी तिजौरी के पास बैठे हैं। संभव है, पसीज जाएं और दस बीस टाका कटोरे में डाल दें। वह उम्मीद से भरकर किंकियाते हुए गद्दी के करीब तक चला आया -' सर, कुछ भीख मिल जाये। सुबु से कुछ नही खाया।'

'ले हलुआ..! पीछा करते यहाँ तक आ पहुंचा, हंह ! चल आगे बढ़ !'

'सर, सिरिफ पांच टाका .. भोत भूख लगा।' वह रिरियाया।

'पांच टाका ?' झाऊ मूंछों के बीच सिंहानियाजी मुस्कुराए -'पांच टाका यूँही आते हैं क्या रे ? खून पसीना एक करना पड़ता है ! भाग यहाँ से..!'

वह दांत पिसता बड़बड़ाता आगे बढ़ गया। सारे दिन आराम से गद्दी पर बैठ कर 'फद फद' करते रहते हैं। अरे, एक दिन कटोरा थाम कर हमारे संग पूरा दिन बीता कर देखो, तब पता चलेगा कि खून पसीना बहाना किसको कहते हैं। कपड़ा पट्टी के मुहाने पर हरि साव की चाय-पकौड़ी की गुमटी थी। पेट मे चूहे उछल कूद मचा रहे थे। डेढ़ बज रहा था। दाहिनी हथेली पैंट की जेब मे थी। हथेली पांच रुपये पचास पैसे को चूजे की तरह सहला रही थी। चार-पांच टाका और जुट जाए तब एक बार में ही पेट भर कर खायेगा। अभी भूख सहने की शक्ति खत्म नहीं हुई है। वह धीरे धीरे चल कर गुमटी के पास चला आया।

'काका, कुछ भीख मिल जाय..।' वह कातरता से गिड़गिड़ाया। हरि साव ने उसे ऊपर से नीचे तक गौर से निहारा, फिर दया दिखाते हुए दो पकौड़ियाँ उसके कटोरे में डाल दी। भीख पाकर उत्साहित होते हुए वह हिनहिनाया -' काका, दुकान में नौकर रख लो न। खूब मेहनत करेंगे।' हरि साव ने एक क्षण को सोचा, फिर हाथ जोड़ दिए -'रख लेता बिटवा। कप प्लेट उठाने-धोने के लिए तू ठीक रहता। पर इन चाइल्ड लेबर वालों का क्या करें ? इनका आतंक बढ़ गया है रे। अभिये हमको और तुमको..दुन्नो को हाजत में दाल देंगे। कल ही सामने वाले होटल में छापा पड़ा था।'

वह समझ नही पा रहा कि ई चाइल्ड लेबर क्या बला है ? मेहनत मजूरी पर ही रोक ! ई कैसा न्याय है भैया? पेट के भीतर जो एगो भट्टी सुलग रहा है उसको कैसे बुझाए उसके जैसे अभागे ! उसका भी एक

छोटा सा घर था। माँ बाबू थे। बहिन थी। थोड़ा खेत भी। बाबू दूसरी मेहरारू करके घर छोड़ कर चला गया। बहिन की ठाकुर के बेटे ने ऐसी दुर्गति की कि बेचारी को पोखर के एक दम तल में जाकर मुंह छिपाना पड़ा। खेत पर बड़का बाबू की नजर पहिले से ही थी। उसे तिकड़म से कब्जियाते देर नहीं लगी। फिर मां को भी उल्टे सीधे लांछन लगा कर गांव से खदेड़ कर ही दम लिया। अम्मां बेचारी क्या करती ! एक अदद नौकरी के लिए खूब हाथ पांव मारी। काम नहीं मिला तो नहीं ही मिला। कौन रास्ता बचता भीख मांगने के सिवाय !

चार कब बजे गए, पता ही नहीं चला। भूख की बेआवाज मार से पांव लड़खड़ाने लगे थे। मन ही मन हिसाब लगाया..पांच टाका पचास पैसे में क्या आएगा। अभी तो पूरी रात बाकी है। न.. अभी नहीं खायेगा। पहले देख ले कि अम्मा के पास से कितना मिलता है। अम्मा का 'कार्य क्षेत्र' रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म है। उसकी नजर रोड के किनारे लगे नल पर गयीं।अंजुरी बना कर ढेर सारा पानी पेट के कुएं में डाल लिया। एक लंबी बेसुरी डकार निकली। भीतर पानी गुड़ गुड़ करके बज उठा। मन उल्टी उल्टी का होने लगा। धत्त बुड़बक.. पानी से जो पेट भर जाता तो इतना हाय तौबा रहती दुनिया में !

गांधी चौक से बाएं मुड़ते ही सेंट जेवियर्स स्कूल था। बड़ा सा भव्य गेट ! दोनों ओर जालीदार चहारदीवारी ! शानदार ग्राउंड और उसके पीछे स्कूल भवन ! छुट्टी हो गयी थी। एक जैसी यूनिफार्म पहने धामा चौकड़ी मचाते गदबदे बच्चों को देख कर मन ईर्ष्या से भर उठा। उसके गांव में भी स्कूल था। कुछ दिन गया था वहां। एक बेला खिचड़ी मिलती थी। खिचड़ी के लालच में ही बच्चे स्कूल आते थे। अचानक आपसी झमेले के कारण पंचायत ने स्कूल को दाल चावल का आबंटन रद्द कर दिया। खिचड़ी बंद तो बच्चों का स्कूल आना भी बंद ! इसी बीच उसका बप्पा दूसरी औरत के साथ लापता हो गया। घर में खाने के लाले पड़ गए। पेट में जब अन्न का दाना न जाये तो कैसी पढ़ाई और कैसा स्कूल ! सब भरे पेट वाले साहूकारों के चोंचले हैं। जहां वह खड़ा था, दो हाथ दूर एक लैंप पोस्ट था। फुनगी पर टंगे लाइट के नीचे एक साईन बोर्ड भी झूल रहा था। बोर्ड में चित्र बना था..! दो बच्चे..पीठ पर स्कूल बैग..हाथ मे किताबें.. आंखों में ढेर सारी चमक ..! एक ओर लिखा था - आओ स्कूल चलें, सर्व शिक्षा अभियान ! उसका मन उदासी से भर गया।

स्टेशन पहुंचा तो पांच बजे चुके थे। चार प्लेटफॉर्म वाला छोटा सा स्टेशन ! तीन प्लेटफॉर्म को एक एक करके एक सिरे से दूसरे सिरे तक खंगाल डाला। अम्मा कहीं नहीं दिखी।चौथा प्लेटफॉर्म मालगाड़ियों के लिए था और उधर यत्रियों की आवाजाही न के बराबर थी। एक मालगाड़ी खड़ी थी ट्रेक पर।अंतिम डिब्बे में आखिर अम्मा दिख ही गयी।आरपीएफ का एक सिपाही बांहों में दबोचे पड़ा था उसे। ननकू को देखते ही अम्मा बाहर आयी और आँचल की गिरह से चार रुपये निकाले -' ल् बबुआ, कुल पनरह टाका मिला। पांच टाका सिपहिया ले लेलको..!' ननकू ने अम्मा के चेहरे को देखा.. विवशता, हताशा और वात्सल्य के अजीब इंद्रधनुषी रंग बिखरे हुए थे वहाँ !

वातावरण में धुंधलका पूरी तरह उतर चुका था। शाम के छः बज गए। अब और भीख मिलने की उम्मीद नहीं थी। उसके पाँव लौटने के लिए मुड़ गए। उसने पहलेजेब के पैसे कहाँ गायब हो गए ससुर ! पागलों की तरह दोनों जेबों को बाहर की तरफ उलट डाला। पैसे नदारद ..! कालेज मुंह को आ गया।

हड़बड़ा कर वापस चार नंबर प्लेटफॉर्म की ओर दौड़ा।पूरे प्लेटफॉर्म को एक सिरे से दूसरे सिरे तक नजरें गड़ाते हुए खंगाल गया। पैसे नहीं दिखे। कहाँ गिर सकते हैं भला ? हिम्मत जुटा कर खोजी नजरों से देखता कदम दर कदम वापस लौट चला। क्रमशः तीन, दो और एक नंबर प्लेटफॉर्म, फिर सेंट जेवियर्स स्कूल.. नल.. हरि साव की गुमटी..और अंत में कपड़ा पट्टी का मुहाना..! पैसे नही मिले। आंखों के आगे अंधेरा छा गया और वह धप्प से जमीन पर लुढ़क गया।

सुबह थी ! सूर्योदय था ! लालिमा थी ! मंदिर था ! चंद्रचूड़ थे ! भीड़ थी ! पुण्यार्थी थे ! सीढियां थीं ! भिखारी थे ! जयजयकारा था ! शोर था !

सब कुछ रोज की तरह था। वह भी मांगने वालों की भीड़ में शामिल हो गया। पहले से ही स्याह चेहरा और भी दयनीय दिख रहा था। होंठों पर पपडियां जमीं थीं।पेट मे पानी गुड़गुड़ कर रहा था।

तभी सिंहानिया जी आते दिखे। रोज की तरह दूध का लोटा लिए। तेज तेज चलने से दूध की बूंदें लोटे से बाहर छलक रही थीं। दूध की बूंदों पर नजर जाते ही ननकू की आंखों में सैकड़ों जुगनुओं की चमक सिमट आयी। वह उनकी ओर लपका -' सर, भोत भूख लगी। रात से कुछ नहीं खाया। दो टाका दे दो सर।'

'दुर्रर..हट..! रोज रोज तंग करने आ जाता है..।' सिंहानिया जी हिनहिनाये।

'सर, भूख भी तो ससुरी रोज रोज तंग करने आ जाती न..।'

पर उसकी आशा पर पानी फिर गया। दुत्कारते और 'शिव..शिव..' उच्चारते गुप्ताजी मेढक की तरह फुदकते सीढियां चढ़ने लगे। वह सीढ़ियों के पास ठमक गया। ऊपर जाना निषेध ! जेहन में एक अंधड़ चलने लगा।

अचानक उसने मन ही मन एक निर्णय ले लिया। फिर कटोरे को सीढ़ियों के पास छुपा कर चुपचाप सीढियां चढ़ने लगा। पहली.. फिर दूसरी..फिर तीसरी..! ऊपर पहुंचते ही आंखें वियोल्लास से खिल उठीं। अभी तक उसका ऊपर आ जाना किसी की नजर में नहीं आया था। प्रांगण के बीचोबीच मंदिर और मंदिर के भीतर भगवान का विग्रह ! दबे पांव मंदिर में झांका। भीतर तीन चार ब्यक्ति भक्ति भाव से पूजा में ब्यस्त थे। गुप्ताजी की आंखें मुंदी हुईं थीं। होंठों पर मंत्रोचार से स्फुट कंपन था। दूसरे ही पल बदन को न्यून कोण में झुका कर विग्रह पर दूध की धार छोड़ने वाले ही थे कि वह तीर की तरह झपाके से भीतर घुसा और लोटे को झपट कर कब्जे में करते हुए मंदिर के बाहर दौड़ गया। गुप्ताजी एक क्षण को सनाका खा गए। आंखें मुंदी होने से जान ही नही पाए कि हाथ का लोटा कहाँ गायब हो गया। फिर पूरे माजरे का पता चलते ही जब तक हाय तौबा मचाते उसके पास पहुंचते, वह लोटे के सारे दूध को कंठ के नीचे उतार चुका था। स्याह चेहरे पर तृप्ति का एक विलक्षण उल्लास खिल आया था जिसे पीठ पर पड़ रहे गुप्ताजी के भारी भरकम धौल भी कम करने में नाकाम थे।

❏❏❏

1. प्रिंस, केडिया मार्किट, आसनसोल 713301(प.बंगाल) मो. 098321 94614

कितनी अधूरी किताब

– कृष्ण नागपाल

चार सितंबर 2020 को रजनी भाभी ने कोरोना की चपेट में आने के बाद हुए हार्ट अटैक से हुई राजेश की मौत की खबर दी। राजेश सोशल मीडिया से दूर रहता था। लिखने-पढ़ने, दोस्ती करने तथा उसे दिल से निभाने के जुनून में मस्त रहने वाले इस लेखक-पत्रकार की असामयिक मौत की दोस्तों को भी खबर नहीं लगी। अकेली पड़ चुकी रजनी भाभी ने हर दोस्त को उसकी मौत की जानकारी दी।

अभी बीस दिन भी नहीं बीते थे, जब राजेश रंजन से कितनी देर तक बातचीत हुई थी। उसने बताया था कि वह इन दिनों बेहद तनाव से गुजर रहा है। पिछले कुछ दिनों से खुद की तबीयत ढीली-ढीली थी। तीन दिन पहले उम्रदराज माता-पिता और बड़े भाई कोरोना पॉजिटिव पाये गये हैं। सबकुछ बिखरा-बिखरा-सा लग रहा है। मैं यहां देहरादून में हूं और वे हजारों मील दूर अकेले सीतापुर में कोरोना से लड़ रहे हैं। सीतापुर कहने को तो शहर है, लेकिन वहां पर अच्छे अस्पतालों का अभाव शुरू से रहा है। सरकारी अस्पतालों पर लोग वैसे भी ज्यादा भरोसा नहीं करते। निजी चिकित्सालय और डॉक्टर मरीजों की जेबे खाली करने के लिए कुख्यात रहे हैं। उस पर इस आंधी की तरह आयी कोरोना की बीमारी ने तो अधिकांश डॉक्टरों को मरीजों के साथ लूटपाट करने का बहाना उपलब्ध करवा दिया है। धन के लालची ऐसे मुंह फाड़ रहे हैं, जैसे इससे पहले नोटों के दर्शन करने से वंचित रहे हों। अस्पताल में भर्ती करने से पहले डेढ़-दो लाख रुपये जमा करने का फरमान सुनाते हैं, जैसे मरीजों के घर में ही नोटों की छपायी हो रही हो। मुझे जैसे ही खबर लगी, मैंने अपनी जीवनभर की जमा पूंजी के चार लाख रुपये मां-बाबू जी के पास भिजवा दिये थे। कल सुबह-सुबह फिर अस्पताल में भर्ती भैय्या का मैसेज आया कि और तीन लाख रुपये की तुरंत जरूरत है। बड़े भाई की मांग ने मुझे असमंजस में डाल दिया। मुझे परेशान देख तुम्हारी भाभी ने अलमारी से अपने सारे सोने के गहने निकालकर मुझे सौंपते हुए कहा कि, 'ज्यादा मत सोचो...। फौरन अपनी पहचान वाले रोहित ज्वेलर्स के यहां जाकर इन्हें बेचो और जो भी रकम मिले भाई जी को भेज दो। ज्वेलर्स ने गहनों का वजन कर बताया कि इस दस तोले सोने के मैं आपको तीन लाख दे सकता हूं। मैंने ज्वेलर्स को याद दिलाया कि इन दिनों प्रतिदिन अखबारों में सोने के भाव बढ़ने की खबरें हैं। कल ही मैंने पढा था कि सोने का भाव पचपन हजार तक जा पहुंचा है। ऐसे में दस ग्राम के पचास हजार नहीं तो चालीस हजार तो दे दीजिए ताकि मेरी समस्या का समाधान हो जाए। ज्वेलर्स मेरी बात सुनकर मुस्कुराया, सर आप भी कौन-सी दुनिया में रहते हैं, जो अखबारों में छपी खबरों पर यकीन करते हैं। आपको पता होना चाहिए कि बाजार

से रकम गायब हो गयी है। हम कैश के अभाव से जूझ रहे हैं। आप जैसे पांच-सात मुसीबत के मारे तो रोज अपने गहने बेचने चले आते हैं। हम तो उन्हें दस ग्राम के बीस-पच्चीस हजार थमाकर चलता कर देते हैं, लेकिन आपसे पुरानी पहचान है। उस पर आप लेखक और पत्रकार हैं, इसलिए आपका मान रख रहे हैं। आप चाहें तो कहीं दूसरे आभूषण विक्रेता के यहां जाकर पता लगा लें। शहर के इस ज्वेलर्स की नोटबंदी से पहले एक छोटी-सी दुकान थी। नोटबंदी के दौरान इसने जमकर अवैध सोना का कारोबार कर करोड़ों की कमायी की। कुछ ही महीनो के बाद इसने शहर में देखते ही देखते तीन भव्य शोरुम खोल लिए। इसके सर पर देश के एक केंद्रीय मंत्री का हाथ चर्चा में रहा है। दरअसल, ऐसे लोगों ने ही 'नोटबंदी' का जमकर फायदा उठाया और बदनाम हुई सरकार। ऐसे आभूषण कारोबारी देश के नगरों, महानगरों में भरे पड़े हैं। इन जैसे लोग ही देश को आर्थिक दुष्चक्र में फंसाने के जिम्मेदार हैं। उस पर भ्रष्ट राजनेताओं का साथ ही इन्हें बलशाली बनाता चला जाता है। देश में संकट काल की छाया पड़ते ही यह लोग लूटपाट मचाने के रास्ते पर चलने लगते हैं।

मेरे पास कोई और चारा नहीं था। तीन लाख लेकर भैय्या तक पहुंचा दिये। अब मेरी तो ईश्वर से यही प्रार्थना है कि माता-पिता तथा भैय्या पूरी तरह से स्वस्थ हो जाएं। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। उनसे मिलने की बड़ी तमन्ना है। देखते हैं कैसे कोई रास्ता निकलता है। राजेश से लगभग घंटे भर तक बात होने के ठीक तीसरे दिन सुबह सात बजे के आसपास मेरा सेलफोन बजा। देहरादून से रजनी भाभी थीं। राजेश रंजन की पत्नी...। ''भाई साहब, मेरी समझ में नहीं आ रहा कि मैं क्या करूं। यह आपके पुराने मित्र हैं, इसलिए सुबह-सुबह आपको अपनी चिन्ता और पीड़ा से अवगत करा रही हूं। इन दिनों यह बहुत परेशान रहते हैं। ऐसी चिन्ता और घबराहट मैंने इनमें पहले कभी नहीं देखी। न ठीक से खाते-पीते हैं और न नींद लेते हैं। आधी रात को उठकर लिखने बैठ जाते हैं। कहते हैं कि मुझे हर हाल में अपना उपन्यास पूरा करना है। मेरे यह कहने पर कि ऐसी भी जल्दी क्या है, तो कहते हैं कि रजनी मेरे इस अधूरे उपन्यास के पात्र मुझे सोने नहीं देते। नींद लेने की कोशिश में होता हूं तो यह मुझे उठ खड़ा होने को मजबूर कर देते हैं। मैंने पहले भी कई कहानियां और उपन्यास लिखे हैं, लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ। फिर जिन्दगी का भी क्या भरोसा। कब ऊपर वाले का बुलावा आ जाए और मेरी किताब अधूरी रह जाए। दिन में जब-तब दोस्तों को फोन लगाते रहते हैं। कोई दोस्त जब फोन नहीं उठाता तो उदास और बेचैन हो जाते हैं। आप ही इन्हें समझा सकते हो। मैं तो हार गई हूं...।' बोलते-बोलते रजनी भाभी चुप हो गईं। मैं समझ गया कि रो रही हैं।

दो कहानी संग्रह, तीन उपन्यास और एक व्यंग्य संग्रह के प्रकाशन के साथ-साथ निष्पक्ष और निर्भीक पत्रकारिता करने में यकीन रखने वाले राजेश रंजन की तड़प को मेरे साथ-साथ रजनी भाभी भी अच्छी तरह से समझती रही हैं। लगभग सात वर्ष पूर्व जब अन्ना हजारे ने भ्रष्टाचार के खात्मे तथा लोकपाल बिल पास करवाने के लिए देश की राजधानी दिल्ली के रामलीला मैदान में आंदोलन-अनशन की मशाल जलायी थी तब यह बेचैन लेखक, पत्रकार रातों-रात सबकुछ छोड़कर राजधानी भाग खड़ा हुआ था। तब इसने बार-बार लिखा और कहा था कि हिन्दुस्तान में काफी वर्षों के बाद किसी निहायत ही ईमानदार, भरोसे के काबिल समाज सेवक ने नयी क्रांति का बिगुल फूंका है। उसकी तपस्या तभी पूरी तरह से रंग लाएगी, जब हर सजग भारतीय उसके साथ खड़ा होगा। 'मैं अन्ना' की टोपी पहनकर राजेश तब तक रामलीला मैदान

में अन्ना हजारे के साथ कंधे से कंधा मिलाकर डटा रहा था, जब तक लोकपाल बिल पर सरकारी सहमति नहीं मिली। राजेश अपने शहर देहरादून लौट आया था...। सरकार भी बदल गयी थी, लेकिन वो दिन पूरी तरह से नहीं आये, जिनके लिए अन्ना हजारे ने आंदोलन... सत्याग्रह किया था। लोग उसका मजाक उड़ाते। व्यंग्य बाण चलाने वाली मित्रमंडली के सवालों के जवाब में आशावादी राजेश यही कहता कि दोस्तो, अभी सबकुछ खत्म नहीं हुआ है...।

जब मुझे उसके गुजर जाने की खबर मिली तो ऐसा लगा कि किसी ने मेरे दिल और दिमाग को निचोड़कर समंदर में फेंक दिया है। मैं लाख हाथ-पैर मारने के बावजूद भी बाहर नहीं निकल पा रहा हूं। यह कोविड-19 और कितनों की जान लेगा? जब से कोरोना ने विकराल रूप अख्तियार किया है, अपनों को खोने की चिंता दबोचे रहती है। सुबह का अखबार हाथ में लेते ही सबसे पहले नज़रें उस पन्ने पर टिक जाती हैं, जिस पर तस्वीर के साथ मृतकों की जानकारी दी गयी होती है। कोरोना की चपेट में आकर मौत के मुंह में समाने वालों की तादाद बढ़ती ही चली जा रही है। पहले अखबार में 'निधन वार्ता' के लिए छोटी-सी जगह निर्धारित थी, जिसमें प्रतिदिन अधिक से अधिक बारह-पंद्रह की मौत तथा अंत्येष्टि की जानकारी छपी होती थी, लेकिन अब तो पूरा पेज भी कम पड़ता नज़र आता है।

चार सितंबर 2020 को रजनी भाभी ने कोरोना की चपेट में आने के बाद हुए हार्ट अटैक से हुई राजेश की मौत की खबर दी। राजेश सोशल मीडिया से दूर रहता था। लिखने-पढ़ने, दोस्ती करने तथा उसे दिल से निभाने के जुनून में मस्त रहने वाले इस लेखक-पत्रकार की असामयिक मौत की दोस्तों को भी खबर नहीं लगी। अकेली पड़ चुकी रजनी भाभी ने हर दोस्त को उसकी मौत की जानकारी दी। राजेश को जितनी चिंता अपने मित्रों की थी, उतनी या उससे कम चिंता फिक्र यदि दोस्तों ने की होती, समय-समय पर उसका हालचाल जाना होता, तो वह इस कदर अकेला न पड़ा होता। उसका मनोबल बना रहता। मौत भी उसे इतनी आसानी से नहीं दबोच पाती। जब भाभी ने उसके गुजर जाने के बारे में बताया तो मेरे मन में यह विचार आया कि उनसे पूछूं कि राजेश ने अपनी अधूरी किताब पूरी की या नहीं...। फिर यह सोचकर रह गया कि जब वह ही नहीं रहा तो किताब का क्या...। कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के अत्यंत सजग और अनुभवी शोधकर्ताओं ने अपने काफी सघन अध्ययन के बाद यह दावा किया है कि दोस्तों के साथ नियमित की गयी बातचीत और गपशप तनाव घटाने का सर्वोŸाम जरिया है। बढ़ती उम्र के साथ पांच-सात सकारात्मक सोच वाले दोस्तों का साथ तनाव, बेचैनी, उदासी चिड़चिड़ेपन, हृदयरोग तथा स्ट्रोक के खतरे को पांच गुना कम कर देता है। गुमसुम रहने वाला इंसान चहकने लगता है। उसके चेहरे पर ताजगी तथा खुशी की चमक आ जाती है।

5 सितंबर की दोपहर कवि, गज़लकार, मित्र सुशील साहिल की फेसबुक पर दिखी इस पोस्ट ने फिर रूला दिया: ''आज मैंने अपना जीवन साथी खो दिया।'' इन चंद शब्दों ने भावुक शायर पर बिजली की तरह गिरे गम के पहाड़ की वजह से नितांत अकेले पड़ जाने की अथाह पीड़ा से रूबरू कराने के साथ गमगीन कर दिया। कोविड-19 ने बड़ी बेदर्दी से जिनके अपनों को छीना, इसके कहर के दौरान नितांत अकेले पड़ गये, जिनके अपनों की असामयिक मौत हो गई, उन्हें हौसला और सांत्वना देने वालों की कमी

को काफी हद तक सोशल मीडिया के विशेष प्लेटफार्म फेसबुक ने पूरा करने में जो भूमिका निभायी, वह अकल्पनीय थी। कुछ लेखक, संपादक पत्रकार, व्यापारी एवं विभिन्न पेशे से जुड़े जागरूक लोग ऐसे हैं, जो सोशल मीडिया पर काफी एक्टिव रहकर अपने आभासी मित्रों के मार्गदर्शन और उत्साहवर्धन में लगे रहते हैं। कोविड-19 की जब ऐसे कुछ प्रतिष्ठित चेहरों पर एकाएक बिजली गिरी और उन्हें अपने स्वजनों को खोना पड़ा तो वे बेहद हताश, निराश और विचलित हो गये। उनके लिए गम के अथाह सागर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया। ऐसे में सच्ची मित्रता निभायी सोशल मीडिया के जाने-अनजाने मित्रों ने। जो कल तक उन्हें दुःख और संकट की घड़ी का डटकर मुकाबला करने की सीख देते थे, उन्हें टूटता बिखरता देख जाने-अनजाने मित्रों की नींद उड़ गयी। उन्होंने बार-बार उन्हें याद दिलाया कि देश और समाज के लिए वे कितने उपयोगी तथा मूल्यवान हैं। जो दूसरों के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं उनका घबराना और डगमगाना उन्हें आहत कर रहा है। हर कोई चाहता है कि वे अपने उसी साहस के साथ खड़े रहें, जिसके लिए वे जाने जाते हैं। कोई भी नहीं चाहता कि उनकी किताब अधूरी रहे। सभी की उसको पढ़ने की दिली तमन्ना है...।

❐❐❐

1. सम्पादक - 'राष्ट्र पत्रिका', नागपाल प्रकाशन प्रा.लि., 'बृज भूमि' कॉम्पलेक्स, दूसरा माला, टेलिफोन एक्सचेंज चौक, सेंट्रल एवेन्यु, नागपुर-440008 (महाराष्ट्र), मोबाईल : 9325378457, E-mail: krishannagpal@gmail.com

तीस बरस पहले की पदचाप

–नीलम कुलश्रेष्ठ

बचपन में याद सुनो, मुझे प्रकृति की फेंकी बारिशों की बूँदों में भिगोने वाले झर ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ झरनों की फुहारों के अहसास में सराबोर करने वाले ! इन पानी की बूँदो से मेरी आत्मा ठंडक से सराबोर हुई थी या तुम्हारी काली तीखी आँखों की छुअन से, पता नहीं।

और पता नहीं, मैं यह पत्र तुम्हें पोस्ट कर पाऊँगी भी या नहीं, लेकिन इसे लिखना रोक नहीं पा रही। बचपन में डैडी ने एक डायरी थमाकर कहा था कि मन पर कभी बोझ हो या दर्द की हल्की पर्त, तो उसका बोझ डायरी में उतार दो.... हल्की होकर निश्चिंत सो पाओगी। मैं डायरी दर डायरी भरती रही। अब तुम पूछोंगे कि आज भी ऐसा कर सकती थी। धत् जब इस पत्र को पढ़ोगे, तब समझोंगे कि इस बेतुकी-सी बात को डायरी पर कैसे उतारती?

जब यह घटना हुई, तो वी. के. कलकत्ते टूर पर गये हुए थे। ऋतु, मेरी बेटी, चेन्नई से आने वाली थी। वह शनिवार का दिन था। मैंने खाली फ्रिज को फल, उसकी पसंद की रसमलाई, ब्लैक फ़ॉरेस्ट पेस्ट्रीज, अंडों से भर लिया था। अचानक उस दुष्ट का फ़ोन आ गया, “मॉम ! वैरी सॉरी, मेरी कंपनी के लंडन हैड विज़िट पर आ रहे है.... आइ एम वैरी सॉरी ! मैं घर नहीं आ पा रही हूँ।”

ऋतु को अभी बंगलौर की कंपनी में गये छ: महीने ही हुए है। मेरे कलेजे के कटे टुकड़े में टीसें लरजती रहती है। आँसुओं को तो आँखे थाम ही लेती है। गौरांग तो शादी के बाद कनाडा जा बसा था। ऋतु के शहर से बाहर जाने के दर्द को मैं पूरी तरह सँभाल नहीं पायी हूँ, क्योंकि विवाह के बाद जिस तिजोरी को तिनके-तिनके करके सँजोया था, बड़े जतन से सहेजा था, वही लुटती जा रही है। अपनी बाँहो के घेरे में ऋतु व गौरांग को बड़ा किया था, उन्हें देखने के लिए आँखें तरस जाती हैं। ऋतु आँगन..... नहीं नहीं फ़्लैट की बाल्कनी की कोयल थी ...... वह भी उड़कर चल दी.... हिश। तुम इन पंक्तियों को पढ़कर हँस रहे होंगें। मैं तुमसे इतना जुड़ चुकी हूँ और बात अपने बच्चों की कर रही हूँ।

उनकी तरल होती आँखें...उस उदास चेहरे से मैं क्यों व्यथित हो रही थी? वह तरलता कहीं मेरे अंदर और न उतर जाए, मैंने एक पैर पर दूसरा पैर रखकर ठोड़ी के नीचे हाथ रखा और अनजान बनकर वक्ता की तरफ देखने लगी। उन्होंने भी मेरी तरफ़ से आँखें हटा लीं, लेकिन होंठों पर से उदासी की पर्त पोंछ नहीं पाये थे।

तुमने हमारी कंपनी में चार्ज़ लेते ही अनुमान लगा लिया था कि वी. के. से मेरी शादी लगभग हर तीसरे दंपत्ति जैसी ही है - बच्चों व सामाजिक रिश्तों की वैसाखी पर घिसटती हुई, जिसकी निचली परतों में भी सौंदर्य तलाशने की बेवकूफ़ी मैं वर्षों पहले छोड़ चुकी हूँ। वी. के. का इस घर में रहना, न रहना बराबर होता है, लेकिन एक साथ के अहसास का कया कहा जाय? उनके जाने के पहले तीन दिन घर के पेंडिंग काम निकाल-निकालकर ऑफ़िस के बाद का समय काटती रही। मसलन, फ्रिज की ट्रे निकलकर साबुन से साफ़ करना ,कबर्ड में सलीके से कपड़ों को रखना , ऊनी कपड़ों को फ़िनाइल की गोलियों के साथ बॉक्स में रखना, ड्रॉइंगरूम का शो केस साफ़ करना और .... अरे ! इसे पढ़कर तुम बोर हो रहे हो.अब समझ में आया, हम औरतों के जीवन के बेशकीमती समय का कितना हिस्सा बोर कामों में जाता है।

तो, मैं ये लिखकर तुम्हें बताना चाह रही थी वी. के. के घर पर न रहने से `घर `चार-पाँच दिन में ही अपने अर्थ खो बैठा था। इसमें नर्म, गुनगुनाती सुगबुगाहटें भरने ऋतु आ रही थी, लेकिन उसके कम्बखत बॉस को तभी आना था। यह घर मुझे सच ही ईटों का मकबरा लगने लगा.... झूलते हुए पर्दे.... साँय-साँय करती ख़ामोशी ..... इन्सानों की साँसो से विहीन ..... मैं इसमें स्वयं को ही श्मशान घाट में घूमती आत्मा लग रही थी। वी. के. अक्सर टूर पर जाते रहते हैं ,लेकिन ऋतु के आने की खुशी पर जो चोट पड़ी थी, मैं मृत-सी हो उठी थी। सारा फ्रिज़ खाने से भरा हो, आप खाने के शौकीन हों और आपकी खाने की इच्छा ही न हो ! मन में अवसाद व वैराग्य पैदा हो रहे हों! क्या इसी को संन्यासाश्रम की आहट कहते हैं ? .... ऐसा वीतराग तो मुझमें कभी पैदा नहीं हुआ था..... क्या इसका एक कारण यह भी था कि तुम्हारा ट्राँसफ़र हो चुका था ! आश्चर्य की बात है न ! मुंबई में हमारी कंपनी में तुम एक प्रोजेक्ट पर काम करने आये थे, तुम्हारा तो जाना तय था, जैसे कि सूरज का शाम को मुँह छिपाना। मैं पहले से ही अंदर तक दरक रही थी, क्योंकि कल्पना करने में और वह स्थिति आने में बहुत अंतर होता है। मैं अपनी ही धुन में प्रयोगशाला में रसायनों के मिश्रण के शोध में लगी रहती थी। तुम्हारी आँखो के आमंत्रण .... तुम्हारी धड़कनों की सच्चाई.... किसी पर तो विश्वास नहीं करना चाहती थी। तुम्हारी बातों को गंभीरता से न लेकर ‘बड़-बड़’ ही समझती थी।

और देखो न। मैनें जीवन में पहली बार जब इन पर विश्वास करना चाहा, तब तक तुम दूर जाने की तैयारी कर चुके थे।

हम जीवन में बार-बार वीतरागी बन वैराग्य की चपेट में आते है, तो मन के निर्जन शिखरों की ऊंचाइयों की वीरानियों में अतृप्त आत्मा से भटकने लगते हैं - तो ये सामाजिक रिश्तें हमे पुकारते हैं। हम पुनः नीचे ढलकते सांसारिक प्राणी बन जाते है। मैं भी सुनसान घर में डोलती प्रेतात्मा ही बन जाती, यदि तूलिका ने मुझे बियाबान अँधेरों से खींच नहीं लिया होता। उसने फ़ोन पर चहकते हुए बताया, “कल मेरी शादी की सिल्वर जुबली है, तुझे मेरे घर आना है।

“वी.के. तो टूर पर हैं। सॉरी ! मैं पार्टी में नहीं आ पाऊँगी। रात में लौटूँगी कैसे?”

“दुष्ट, तू बहाने मत बना। तुझे नताशा ड्रॉप कर देगी। वह भी तेरी तरफ़ ही रहती है।”

“कुछ काम हो, तो बता देना...”

“देवी जी! आप आ ही जाइए। प्लीज़ ! ओब्लाइज़ अस। और हाँ, समीर के कज़िन, मेरे जेठ जी, वही फ़ेमस हार्ट सर्जन डॉक्टर भी दिल्ली से आ रहे हैं।”

“गुड! फ़ंक्शन में कोई परिवार का व्यक्ति होना ही चाहिए तभी अच्छा लगता है। ओ.के. बाय...।” मैंने फ़ोन रख दिया।

एक क्षण बाद मैं एक बेचैनी में घिर गयी। समीर के कज़िन, यानि दिल की बीमारी के लिए विख्यात डॉक्टर ! यानि ...यानि ...खैर मुझे क्या ?

लेकिन, मुझे तुमसे भी क्या? तुम्हें किस्मत ने सब भरपूर दिया है। कंपनी की फ़्रेन्चाइज़ में तुम्हारी पत्नी काम करती हैं। बेटी-बेटे भी सेटल होने जा रहे हैं। तो, वह क्या था, जो तुम अपना अधूरापन मुझमें ढूँढ़ रहे थे? वह क्या था कि तुम खोये-खोये कुछ सोचते, होंठों को सिये मुझे घूरते हुए कुछ भी नहीं बोल रहे थे,और आँखों से बोल रहे थे। मैं अपनी रौ में कंपनी की एक नयी दवा पर हो रहे शोध के बारे में बता रही थी। मैंने अपनी बात खत्म करके पूछा था, “आप इस ‘पेनकिलर’ में और कौन-सा केमीकल एड करने की सलाह देंगे?”

“कैसी सलाह? मैं क्यों दूँगा?” तुम्हारी आँखें मुझ पर टिकी शून्य में विचार रही थीं।

“वॉट सर! मैं केमिकल्स की इस लिस्ट के बारे में बता रही थी।”

“कब?” तुम हड़बड़ा गये थे।

“वॉट?”

“ओ हाँ, रिपीट इट...अब बताइए।” तुम थोड़ी अलर्ट मुद्रा में आ गये थे।

“अब क्या बताऊँ.. ?” मैंने गुस्से में तुम्हारे सामने लिस्ट रख दी थी और उठकर चल दी थी। किसी की अपने पर टिकी आँखें मुझे बेचैन कर पाएँ, मैं ऐसी नहीं थी। अपनी टेबिल पर आकर मैं कोई भी फ़ाइल पलटती, हर पृष्ठ पर वे आँखें मुझे जड़ी मिलतीं। सोते समय भी अपनी आँखों से उन्हें जुदा नहीं कर पायी थी।

कितने कितने अजीब इत्तफ़ाक से हम टकराते रहे। एक साइंस क्विज़ में तुम जज थे। मैं हॉल में देर से आ पायी थी। मैं कोने वाली कुर्सी पर बैठना चाह रही थी कि नीरव ने इशारों से बताया कि वहाँ कोई आने वाला है। मैं आगे की पाँचवी खाली कुर्सी पर बैठ गयी। थोड़ा सँभलने के बाद देखा कि डायस पर तुम्हारी कुर्सी ठीक मेरे सामने थी।... चेरियन फ़्लॉवर सोसायटी का वह फ़्लॉवर शो याद है? इतनी भीड़-भाड़ में भी हम टकरा गये थे। तुम अपना हैन्डीकैम हाथ में लिए एक ललक से यहाँ-वहाँ शूट कर रहे थे। मैं एक बड़े बैंगनी व पीले फूल का नाम जानने जैसे ही मुड़ी थी, मेरा चेहरा तुम्हारे ही हैन्डीकैम के लेन्स की चपेट में था। मेरे मुँह से निकला था, “यू...सर ! आप ! आपको फूलों का भी शौक है?”

“ओ येस... केमीकल्स की दुनियाँ में जब मैं स्वयं एक कंपाउन्ड बनने लगता हूँ, तो उस दुनियाँ से भाग निकलता हूँ फूलों की, पेंटिंग की दुनियाँ में। मैं तो समझता था कि मुंबई वाले सिर्फ़ मशीन होते हैं।”

मैं उस दिन तुमसे कह नहीं पायी थी कि एक युवक की तरह टेढ़े-मेढ़े होकर तुम्हें शूट करता देख कौन विश्वास करेगा कि तुम एक कंपनी के आर एन्ड डी विभाग के प्रमुख हो।

जिस दिन मैं ड्रग की लिस्ट तुम्हारी मेज़ पर पटक आयी थी, उसी रात कंपनी के संगीत कार्यक्रम वाले दिन भी तो इत्तेफ़ाक से तुम्हारे पीछे वाली कुर्सी पर जा बैठी थी। तुमने गर्दन मोड़कर शरारत से मुस्कराकर कहा था, "हलो!"

"हलो!" मुझे चिढ़ते हुए 'हलो', करनी ही थी क्योंकि तुम मेरे सीनियर थे। मैंने कुर्सी बदलने के लिए हॉल में नज़र डाली थी, लेकिन तब तक सभी कुर्सियाँ भर चुकी थीं। उस समय लग रहा था कि वह हॉल ही उष्मा से पिघलने लगा है...मैं पिघल रही हूँ। उस हॉल में तुम्हारे होने के अहसास के सिवाय कुछ नहीं था।

"क्या तुम एक बार भी अपने घर डिनर पर नहीं बुलाओगी? सच ही सुना था कि मुंबई वाले बड़े कंजूस होते हैं।"

"ऐसी कोई बात नहीं है, वी.के. कलकत्ता लंबे टूर पर गये हैं।"

"तो चलिए, हम ही आपको डिनर पर इनवाइट कर लेते हैं।"

मैं अपने अंदर अपने शोध-विभाग में दवाइयों से गँधाती प्रयोगशाला में सिमटी-सिकुड़ी जीवन क्या बिता रही थी, अपने को शापित किये बैठी थी। या, शायद वी.के. के जुगुप्सापूर्ण साथ ने मुझे पत्थर बना दिया था। मैं जानती थी कि कॉर्पोरेट वर्ल्ड अपने एक्ज़ीक्यूटिव्स को आसमान छूती बुलंदियों पर बैठा देता है। उनमें से कुछ कीचड़ की अतल गहराइयों में डूबते चले जाते हैं, कंपनी के खर्चे पर। होटलों में कभी ग्रुप में, कभी अकेले एक दो आवारा छोकरियों को बिठाकर जाम ढालने में अपनी मर्दानगी समझते हैं। ज़रुरत से अधिक मिले पैसे को वे इसी कीचड़ पर बहाने लगते हैं।

सच लिखूँ, तुम्हारे इस आमंत्रण में तुम्हारी आँखों में एक साफ़-सुथरा आसमान लहरा रहा था, जिसके सफेद तिरते बादलों में मैंने पहली बार गुम हो जाना चाहा। अपनी बाँहे फैलाकर उन बादलों को अपने दामन में भर लेना चाहा था। ठीक उसी दोपहर तुम्हें फ़ोन मिला था कि तुम्हारी पत्नी को हार्ट अटैक हुआ है। तुम्हें शाम की फ़्लाइट से जाना ही था। तुम विभाग के वैज्ञानिकों को अपने शोध के रिकार्ड्स देने में लग गये थे। मेरे साथ बैठकर उन्हें काम दे रहे थे।

तुम बदहवास थे, कातर थे, व्यस्त थे; लेकिन बीच-बीच में मुझे देखती तुम्हारी आँखों में एक पनीला दर्द लहक रहा था। तुम जिस पैन से काम कर रहे थे, चलते समय तुमने मेरे हाथ में थमा दिया था। रुँधी आवाज़ में भावुक होकर कहा था, "हम फिर मिलेंगे।"

मेरी आवाज़ नहीं निकली थी, आँखों ने कह दिया था- "श्योर।"

देखो न! अकेले घर में डोलती मैं पीछे कहाँ कहाँ भटकने लगी हूँ, असली बात बताना भूल ही गयी... तो सुनो, उस शनिवार नताशा, मेरी एक सहेली मुझे पार्टी में ले जाने के लिए अपने परिवार के साथ 'पिक' करने आ गयी थी। तूलिका का फ़्लैट काफी बड़ा है। उसने उसके हॉल में ही पार्टी अरेंज की थी। अभी तक

वहाँ कुछ क़रीबी दोस्त ही इकट्ठे हुए थे। तूलिका नताशा को मेरे पास से खींचकर ले गयी थी, क्योंकि वह इंटीरियर डेकोरेटर थी। तूलिका हॉल की साज-सज्जा में कुछ बदलाव चाह रही थी। मैं अकेली खड़ी सोच रही थी कि क्या करूँ, इतने में तूलिका के बेटे के साथ समीर के कज़िन यानि डॉक्टर साहब आते दिखाई दिये। मैं इधर-उधर देखने का बहाना करने लगी, लेकिन वे हॉल के दरवाज़े से खिंचते हुए-से मेरे सामने आ खड़े हुए, "नमस्कार! कैसी हैं?"

मैं अचकचा गयी थी। जिससे कभी जीवन में एक शब्द बात भी नहीं हुई, सिर्फ एक छूटे हुए शहर में रहने का नाता हो, वह बिना किसी औपचारिकता के भावुक होकर पूछ रहा है कि

"नमस्कार कैसी हैं?"

" फ़ाईन?" मैंने ज़री के बॉर्डर वाली साड़ी को बिना बात ही सँभालते हुए कहा था। असमंजस की स्थिति में मेरे मुँह से निकल गया था, "हाऊ आर यू?"

"ओ! मैंने सही सुना था कि मुंबई आकर लोग अँग्रेज़ बन जाते हैं।"

"नॉट एट ऑल...ऐसा नहीं है," मैं हड़बड़ाई हुई थी। वह तो अच्छा हुआ कि दो-तीन लोगों ने आकर उन्हें घेर लिया था, "डॉक्टर साहब! आप मुंबई कब आये?" चालीस बरस की आयु के बाद बहुत से लोग बी.पी. व डायबिटीज़ के शिकार हो जाते हैं। वे दो-तीन लोग भी शायद ऐसे होंगे, जो उन्होंने डॉक्टर साहब को घेर लिया था।

मैं चार-पाँच कदम पर खड़ी आशिमा को देखकर उसकी तरफ़ बढ़ गयी थी। उन तीन में से कोई उनसे कह रहा था, "सर! आपका विज़िटिंग कार्ड?"

उन्होंने अपनी जेबें टटोलीं, फिर निराश स्वर में कहा, "सॉरी! मैंने दूसरे पर्स में रखे थे। आप पैन दीजिए, मैं लिखकर दे रहा हूँ।"

कुछ इत्तेफ़ाक था कि पार्टी-मूड में होने के कारण किसी के पास पैन नहीं था। डॉक्टर साहब जैसे बहाना ढूँढ रहे थे, वे कुछ कदम चलकर मेरे पास आ गये, "आपके पास पैन है?"

मेरा दिल धड़क उठा था कि मैं 'हाँ' कहूँ कि 'ना'। मैं जानती थी कि तुम्हारा दिया हुआ पैन मैं कभी अपने से अलग नहीं करती थी। पर्स बदलती, तो सबसे पहले पैन उसमें रख देती थी। मुझसे 'ना' नहीं कहा गया। पैन देते हुए मेरा हाथ कंपन कर रहा था। ये कौन है, जो कहीं बैठा किसी अनजानी कलम से हमारी तक़दीर लिखता है। तीस बरस पहले अपने छूटे हुए शहर में, जिसकी पाँच-छह बार से अधिक झलक नहीं देखी थी, जो इस महानगर में एक फ़्लैट में टकरा गया है। तुम मेरे मन में बिंध चुके हो, उस सच की रोशनी में मेरे होंठ थिरकते मुस्करा रहे हैं। तुम्हारी दी हुई सौगात मैं एक अतीत के हाथों में दे रही थी, जो मेरा दोस्त भी नहीं था।

"थैंक्स!" वे मेरे हाथ से पैन लेकर एक पॉकिटनुमा डायरी में अपना पता व मोबाइल नंबर लिखने लगे।

तब तक बेयरे स्टार्टर व कोल्ड ड्रिंक लेकर घूमने लगे थे। मैंने एक प्लेट से रोस्टेड पनीर एक टूथ पिक

से लेकर पेपर नेपकिन में ले लिया। उस पर चम्मच से हरी चटनी डालकर खाने लगी। उनके हाथ में तुम्हारा दिया पैन देखकर सच मानो मुझे बेहद रोमांच हो रहा था, साँसें थमने लग गयीं थीं। कैसी थी वह छोटी-सी घटना, बेहद छोटी-सी। तीस बरस पहले मेरे पीछे मुड़कर देखने भर की तो बात थी। सिर्फ मैं पीछे मुड़कर एक बार देख भर लेती...और...वे व मैं अपनी अलग दिशाओं में बढ़ते तो न जाते...बेहद दूर...बेहद दूर... जहाँ से पलटना नहीं हो सकता था। यदि देख लेती, तो तीस बरस का इतिहास ये न होता...उनके हाथ में तुम्हारी सौगात देखकर मैं थरथरा रही थी...उस एक पल में मेरा भविष्य पहले से निश्चिंत था...उस विपरीत दिशा में भी चलना मेरा तय था...साल दर साल चलकर, तुमसे मिलकर मेरी तलाश का पूरा होना तय था। देखो न, प्रकृति तय करती है न, ये सब! यदि मैं तुम तक नहीं पहुँची होती, तो कैसे जानती कि मौसम का मिज़ाज किसी के होने से कैसे बदल जाता है! आस पास की चीजों में नये अर्थ खिलने लगते हैं। ख़ुशनुमा रोमानियत में डूबा मन अचानक कैसे उदासी की पर्तों में डूब जाता है। बिना बात क्यों आँखें भर आती हैं। मन हमेशा क्यों आलोक में नहाया लगता है।

पैन लिये डॉक्टर साहब को देखकर मैं सोच रही थी कि तकदीर ने चाहा होता, तो वे मेरी किस्मत में लिखे होते...लेकिन उसने मेरे व उनके लिए कुछ और तय कर रखा था...वी.के. का मेरे माथे पर पट्टा... मेरा ता-उम्र एक खुशबू की तलाश में भटकना...उम्र के इस पड़ाव पर तुम्हारा पल भर मेरे जीवन में आ जाना...न प्यार भरी बातें, न सरगोशियाँ, न स्पर्श- फिर भी मेरे व्यक्तित्व का बेपनाह तृप्तियों में डूब जाना। तुम तो जानते हो कि कुछ लोग ढेर से लोगों से रिश्ते बना सकते हैं, कुछ लोग किसी भी जिस्म से जुड़ सकते हैं, कुछ 'गे' या 'लेस्बियन' होते हैं। मुट्ठी भर लोगों की तलाश रुहानी होती है ऐसे लोग कभी भी इन पहले फ़ितरती लोगों द्वारा सताये जाते हैं। सभी अपनी –अपनी फ़ितरत से मजबूर होते हैं। तीस बरस पहले की वह घटना पल भर की थी, लेकिन जाने कितने पलों के संयोजन से वह पल आया था। उसका अक्स भी मेरे मन से मिट ही गया था। शादी के बाद की लक्ष्यों को प्राप्त करने की गहनतम व्यस्तताएँ, उनमें लीन दिल-दिमाग़। डॉक्टर साहब का चेहरा हद कर रहा था। दिल को चीरती उस पीड़ा को देखकर लग ही नहीं रहा था कि एक-एक बरस चलता हमारा जीवन तीस बरस लाँघ आया है कि हम अलग-अलग दिशाओं में चलते तीस बरस आगे आ गये हैं।

तीस बरस...मतलब कितने क्षण...कितने दिन...कितने महीनें...उनकी व्यस्तताएँ...नये परिवार के नये रिश्ते...नये-नये दोस्त...परिवार...नये मिलते, बिछुड़ते पड़ौसी ...बच्चों की पढ़ाई...उनके कैरियर की चिंता में उलझे वे वर्ष...उन्हें ज़माने के कालेपन से बचाने की चिंता...अपना कैरियर...मुंबई जैसे शहर में अपनी जगह बनाने की चिंता...घर सजाने की...खाना खिलाने की चिंता...ब्यूटी पार्लर?... ओ नो, मैं अपने को इतना व्यस्त रखती हूँ कि उस तरफ जा नहीं पाती। तीस बरस के इस सफ़र के बाद लगता ही नहीं था कि हम किसीऔर शहर में पैदा हुए थे। कोई शहर है, जो हमसे छूट गया है। जब कभी भावुक होते हैं, तो कहीं जाकर वही शहर मन में धड़कने लगता है।

आश्चर्य है, ये सब मिटाकर या पोंछकर या ऐसे, जैसे ये वर्षों का सिलसिला कभी बीच में था ही नहीं, वह पल आज भी डॉक्टर साहब के चेहरे पर बिछा कह रहा था- "जी सुनिए!"

ओ हो! तुम इस पहेली में उलझ गये होगे। दरअसल, मैं पढ़ाई ख़त्म करके वैज्ञानिक पद पर काम करना चाहती थी। उस शहर में उस समय इस सपने के साकार होने के कोई आसार नहीं थे। मैं सुबह दो घंटे म्यूज़िक सीखने जाया करती थी। उस कोर्स के आखिरी दो दिन बचे थे एक दिन सुबह साढ़े सात बजे सूरज की सूरमई रोशनी में ठंडी बयार में चलती मैं म्यूज़िक स्कूल बढ़ी जा रही थी। आख़िरी चौराहे पर कोई युवक मेरे रास्ते में पीठ किये खड़ा था। मैंने डॉक्टर साहब को इतना कम देखा था, लेकिन लगा शायद वही है। मैं सीधी डग भरती आगे निकल गयी। बाद में समझ पायी कि वे मुझसे कुछ कहने आये थे। बिचारे! उस समय के युवक कुछ कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे, हौसले पस्त हो जाते थे। अरे! अरे! मैं तुम्हें यह बताना भूल गयी कि उनसे मेरी शादी की बात चल रही थी। तब मुझे भी पता नहीं था कि कुछ लोगों ने मेरे व मेरे परिवार के बारे में कुछ ग़लतफ़हमियाँ पैदा कर दी थीं।

दूसरी सुबह देखा कि वही युवक पीठ किये चौराहे के कोने में खड़ा है। सच बताऊँ, अब मैं समझ गयी थी कि ये वही जनाब हैं। तुम्हें तो पता है, उन दिनों लडकियाँ कितनी बेवकूफ होती थीं। मैं भी उन्हीं में से एक थी। मेरा दिल धक-धक करने लगा। क़दम आगे बढ़ने से इन्कार कर रहे थे। मैं शोल्डर बैग लटकाये जल्दी-जल्दी आगे बढ़ी जा रही थी। गनीमत थी कि मैं उनसे आगे निकल गयी थी। मेरे पीछे से आवाज़ आयी "जी सुनिए।"

घबराहट में मेरा दिल इतनी ज़ोर से धड़कने लगा कि मैं बिना उत्तर दिये तेज़ चलती चली गयी। न मैं शर्म व घबराहट में पीछे देख पायी, न वे घबराहट में दोबारा आवाज़ दे पाये। न चलकर सामने ही खड़े हुए।

बस सिर्फ़ एक पल की तो बात थी। मैं झिझक छोड़ मुड़कर देख लेती या वे झिझक छोड़ दोबारा पुकार लेते या सामने आ खड़े होते। हम कुछ देर बात करते, उनकी ग़लतफ़हमियाँ दूर होतीं। लेकिन किस्मत में तो मुंबई का यह पंद्रहवी मंज़िल का फ़्लैट लिखा था। हम उस दिन के बाद अलग-अलग दिशा में अपने कंधो पर रखी मृतप्राय ज़िदगी को जीते यूँ अंदर से लकवाग्रस्त तो न हुए होते। हम दोनों विपरीत दिशा में अपने-अपने दुर्भाग्य की तरफ तो न बढ़े होते।

काश! जीवन किसी रिमोट से रिवाइन्ड किया जा सकता...जीवन मनोरंजन का कोई चै नल नहीं है कि बटन दबाया और बदल गया। आज तुम्हें लिखते हुए मैं उलझ रही हूँ कि डॉक्टर साहब उस दिन क्या कहना चाहते थे। उनकी सगाई कहीं ओर हो रही थी, वे उससे पहले मुझसे मिलकर एक चांस लेना चाहते थे।आश्चर्य है तीस बरस बाद भी उनका तड़पता चेहरा आज क्या कह रहा है?

पार्टी में तूलिका व समीर ने केक काटा। तूलिका माइक से अपने जेठ जी का परिचय करवा रही थी। वैसे वे परिचय के मोहताज़ नहीं थे। हर समाचार-पत्र में उनकी हार्ट सर्जरी की कोई न कोई ख़बर रहती है।

उन्होंने तूलिका से माइक लेकर उसी के बॉस को कुछ बोलने के लिए आमंत्रित कर लिया था। डॉक्टर साहब ने उनके बोलने के बाद माइक लेकर अपनी लच्छेदार बातों में सबको उलझा लिया। देखा न, ज़माना कितना बदल गया है। जब हम लोग युवा थे, तो किसी विभाग के प्रमुख या कंपनी हेड नाक पर चश्मा चढ़ाये, विद्वत्ता के बोझ से दबा चेहरा लिए एक गरिमापूर्ण सीमा में कैद रहते थे। वे खुलकर हँसते

नहीं थे। थोड़ा अहसान जताते हुए मुस्करा भर देते थे। आज के एक विभाग के एक प्रमुख तुम हो...हवाओं से उड़ते...हैन्डीकेम से फूलों को उत्साह से कैद करते हुए। एक ये डॉक्टर हैं, जो कभी चुटकले, कभी शायरी सुनाकर कार्यक्रम को आगे बढ़ा रहे हैं। तूलिका के बॉस व परिवार वालों के बाद वे मुझे आमंत्रित करेंगे, मैंने सोचा भी नहीं था।

"जी हाँ, अब मैं आमंत्रित कर रहा हूँ एक जीनियस साइन्टिस्ट को, तूलिका की मित्र। अब वे इस दंपत्ति के बारे में अपने अनुभव आपको बताएँगी।"

मैंने माइक सँभाल कर संक्षिप्त स्वर में कुछ कहा और जान छुड़ाती नताशा के पास वाली प्रथम पंक्ति की अपनी कुर्सी पर आ बैठी। तभी दो बच्चे केक खाते सामने वाली प्रथम पंक्ति की कुर्सियों पर आ गये। डॉक्टर ने तब तक तूलिका की बेटी को आमंत्रित कर लिया था। उनकी कुर्सी पर एक बच्चा बैठा था। उन्हें ठीक मेरे सामनेवाली कुर्सी पर बैठना पड़ गया। हम एक दूसरे को देखने से बच नहीं सकते थे। मैं असहज हो गयी थी, लेकिन उनका चेहरा आर्द्र होता जा रहा था। एक गहरी उदासी व तकलीफ़ में उनका चेहरा घुलने लगा था जो चश्मे के पीछे से छिपाये न छिप रही थी। मैं जड़ हो गयी थी- उदासी में आगे उभर आये, उन दो होठों की तकलीफ से आँखों की चीरती हुई कसक से।

उनकी तरल होती आँखें...उस उदास चेहरे से मैं क्यों व्यथित हो रही थी? वह तरलता कहीं मेरे अंदर और न उतर जाए, मैंने एक पैर पर दूसरा पैर रखकर ठोड़ी के नीचे हाथ रखा और अनजान बनकर वक्ता की तरफ देखने लगी। उन्होंने भी मेरी तरफ़ से आँखें हटा लीं, लेकिन होंठों पर से उदासी की पर्त पोंछ नहीं पाये थे।

सुनो! मुझे तो पता था कि उनकी पत्नी बहुत कम उम्र में लकवाग्रस्त हो गयी थीं। वे अपना काम व बच्चों की परवरिश कैसे करते रहे, यह तो वही जानें। तुम्हें भी नहीं पता ,न उन्हें कि वी.के. जैसे आदमियों की बीवियाँ उनके गले में बार-बार पट्टा डालकर घर चलातीं हैं। किस तरह ऐसे लोग सुबह-सुबह म्यूज़िक सिस्टम में गायत्री मंत्र या हनुमान चालीसा की सी.डी. बजाकर धार्मिक नगाड़े बजाते हैं और दिन में आवारा औरतों का साथ ढूँढते रहते हैं। मुंबई जैसे सौदेबाज शहर में आरंभ में कितनी नौकरियाँ बदलती, स्वयं को बचाती, किन किन काँटों पर पैर रखती, तलवों से खून टपकाती चलती रही हूँ, इस बात को शायद कोई न समझ पाये।

तीस बरस पहले, बस एक पल की तो बात थी कि मैं मुड़कर देख लेती या वे दोबारा पुकार लेते, तो हम अपनी-अपनी सलीबों पर यह पेरालाइज्ड़ साथ तो न ढो रहे होते। हमारे चेहरे खिलखिला रहे होते, हमारी हर बात चुलबुली होती

थोड़े गीत, गज़ल, थोड़े डांस के बाद मैं अपनी खाने की प्लेट लेकर एक कोने में बैठ गयी थी। अभी पूरी का एक कौर तोड़ा ही था कि देखा सामने डॉक्टर अपनी प्लेट हाथ में लिये खड़े थे। मैं उन्हें सम्मान देने के लिए खड़ी हो गयी।

"सुना है आपने अपने बेटे की शादी कर दी है।"

“जी हाँ, वह कनाडा में है।”

“गुड!”

“अरे डॉक्टर साहब, आप यहाँ हैं, मैं आपको ढूँढ रही थी,” थोड़ी थुलथुल पीली साड़ी में तूलिका की ब्वॉय कट बालों वाली तूलिका की बुआ भी अपनी प्लेट लेकर आ गयी थी।

“नमस्कार, बुआ जी! आपसे तो तूलिका की शादी के बाद कभी मिलना ही नहीं हुआ,” उन्होंने शालीनता से कहा, लेकिन नज़रें बेबसी से मुझे देख रही थीं।

“अरे, फ़ेमस लोग भुलक्कड़ होते हैं। मैं अपनी ननद के जेठ की बेटी की शादी में जब आपकी सिटी आयी थी, तब आपसे मिली थी।”

“ओ यस!” वे भी उनका दिल रख रहे थे।

“मैं आपको तकलीफ़ दे रही हूँ। मेरा बी.पी. हाई रहता है, चलते-चलते हाँफने लगती हूँ।”

“बट, यू आर लुकिंग क्वाइट यंग एन्ड चार्मिंग।”

“आप मुझे बना रहे हैं, लेकिन वैसे लोग मुझे दस वर्ष छोटा समझते हैं।”

तब तक दो-तीन और लोग उन्हें घेरने आ गये थे। मैं अपनी प्लेट लेकर कोने से खिसक ली। अपनी प्रसिद्धि से घिरे वे बड़ी बेबसी से मुझे देख रहे थे, उस दिन भी वे क्या कहना चाह रहे थे?

खाना समाप्त करने के बाद मैंने नताशा से कहा, “चलो अब निकलते है, दूर भी जाना है।”

“श्योर! मैं रंजन को ढूँढती हूँ, किसी से शेयर मार्केट के बारे में बहस करते उलझे होंगे।”

डॉक्टर साहब की उस बेचैनी से मैं आहत थी। उस पल को याद कर विस्मित थी। एक परिवार में जन्म लेने के बाद भी कैसे लोग अपनी-अपनी नियति की तरफ़ बढ़ते जाते हैं। कुछ बीच रास्ते ही गुम हो जाते हैं। अक्सर, बेवकूफों के हाथ लबालब छलकती ज़िंदगी आ जाती है, कुछ ज़हीन लोग ज़िंदगी के साथ घिसट रहे होते हैं। मैं तूलिका के फ़्लैट से निकल, लिफ़्ट से नीचे उतरकर बिल्डिंग के लॉन में टहलने लग गयी थी। ऐसी पार्टीज़ में, चाहो या न चाहो, कुछ ज्यादा ही खा लेते हैं। ऊपर से एक अनजानी तकलीफ़ से भर गयी थी मैं। पाँच मिनट...दस मिनट...पंद्रह मिनट...बीतते जा रहे थे, नताशा आने का नाम नहीं ले रही थी। मैं जान-बूझकर ऊपर जाना नहीं चाह रही थी। यदि तूलिका के घर जाती, तो डॉक्टर साहब की चीरती आँखें देख मेरा दिल काँपने लग जाता। तुम इस बात को पढ़कर कहीं जल तो नहीं रहे हो? मैंने तुम्हें पहले ही बता दिया था कि वे मेरे दोस्त तक न थे, लेकिन जीवन में कितनी तरह के रिश्तों से हम बँधे होते हैं। आगे बढ़ते हुए हम उन्हें भूल जाते हैं कि अचानक हम देखते हैं कि एक फॉसिल की तरह वह कहीं हमारे दिल में जड़े हुए हैं हूबहू उसी रूपमें।

बीस-पच्चीस मिनट बाद नीचे आयी नताशा को देखकर मैं बरस पड़ी, “इतनी देर कहाँ लगा दी थी?”

रंजन बोले, “हम तो निकल ही रहे थे कि डॉक्टर साहब ने रोक लिया, बातों में लगा दिया।”

नताशा बोली, "वे हार्ट सर्जरी ही नहीं रि़श्तों की सर्जरी भी करते हैं। अग्रवाल समाज में बहुत लोगों को जानते हैं, हमसे भी ढूँढ-ढाँढकर रिश्ता निकाल ही लिया।"

सुनो, डॉक्टर साहब को पता था कि मैं नताशा के साथ घर जानेवाली हूँ। तुम भी समझ गये होगे कि नताशा व उसके पति को उन्होंने जान-बूझकर घेरा था, जिससे मैं नीचे खड़ी-खड़ी बोर होकर उसे बुलाने जाऊँ। तीस बरस बाद भी इस बार मिलकर बिछुड़ने से पहले वे कुछ कहना चाहते थे या सिर्फ़ मेरी एक बार और झलक देखना चाहते थे?

एक बात लिखना भूल गयी कि डैडी-मम्मी हम दोनों बहनों को अपने ही शहर में ब्याहना चाहते थे। तब तक डॉक्टर की तारीफ़ें मुझ तक पहुँच चुकी थीं, मेरी भी उन तक। उस पल के निकल जाने के बहुत दिनों बाद हिम्मत जुटा पायी थी। एक ग्रीटिंग कार्ड उन्हें पोस्ट कर दिया था, जिसके एक कोने पर लिखा था, 'जी सुनिए।' लेकिन वह एक पल था, जो हाथ से निकला, तो निकल चला फिर हाथ कैसे आ सकता था ? जब तक मेरा कार्ड उन तक पहुँचा, उनकी सगाई हो चुकी थी। डैडी-मम्मी कहाँ बाँध पाये मुझे अपने शहर में ? मैं समुद्र तट पर बसे लोगों के समुद्र से भरे शहर में आ समाई थी।

तुम बेहद भावुक हो, अब कहोगे कि क्या हो जाता यदि मैं तूलिका के घर दोबारा चली जाती ? मेरा क्या बिगड़ जाता ? मैं सच बताऊँ, उन्हें तो पता था कि मैं उनकी पत्नी के रोग के बारे में, उनकी पत्नी की विषमता के बारे में तूलिका के माध्यम से जानती हूँ, लेकिन उन्हें कहाँ पता था कि एक रेगिस्तान के कैक्टस के काँटों से बिंधी मैं जी रही हूँ। लकदक साड़ी में लिपटी अपनी माँसल पर्तों से खिलखिलाती, मुस्कराती मैं क्यों चाह रही थी कि मेरी ख़ुशहाली से वे जलें। तुम तो जानते हो कि मैं निर्मम नहीं हूँ, लेकिन मैं सच ही नहीं चाहती थी कि आइ लाइनर लगी मेरी आँखों की कोरों में दबी छिपी मेरी तकलीफ़ वे पढ़ लें। अधिकतर हम औरतें दुखों का, कुंठाओं का पहाड़ होती हैं। इसलिए, बड़ी शिद्दत से अपने को उपर से नीचे तक सजाकर, खिलखिलाकर जी जाती हैं, पूरे जीवट के साथ। तुम कहोगे कि देखो, तुम्हें कुछ तो... नहीं...नहीं, मैं तुम्हारी बात नहीं सुनूँगी, मैं निर्मम क्यों नहीं हो सकती ? आखिर डॉक्टर के घरवालों ने ही मेरे घर से गया प्रस्ताव ठुकराया था। उस शनिवार पार्टी की रात मैं आकर गहरी नींद में नहीं डूब पाई थी।

इतवार की सुबह देर से नींद खुली। उसी दिन वी.के. आने वाले थे। मैं अपनी आदत से मजबूर थी, बाई के साथ वी.के. की पसंद की कुछ चीज़ें बना रही थी। इस मृत घर में शांत पर्दे वी.के. के आने की आहट से ही अँगड़ाई लेने लग गये थे। फ़्रिज, ए.सी., ड्राइंगरूम के सजे ताज़ा फूलों में जीवन की सुगबुगाहटें जाग उठी थीं। इस घर के होने का कुछ अर्थ होने लगा था।

कॉल बेल बजने पर मैंने दरवाज़ा खोला।

"कैसी हो?" वी.के. दरवाज़े पर ब्रीफ़केस लिये बुझी आँखों से पूछ रहे थे।

इन मुर्दा आँखों में आहट होने की आस मैं कब की छोड़ चुकी हूँ। चाय व नाश्ते के बाद वी.के. का अख़बार पढ़ना, शीशे के सामने गाल पर रेज़र चलाना, टी.वी. देखना, मेरी उपस्थिति को बिना महसूस किये हुए साथ में खाना खाना... इस सबसे ही घर में जीवन स्पंदित हो गया था।

मुझे आज कैसी विचित्र अनुभूति हो रही है। शायद डॉक्टर साहब से मिलकर, उनके चेहरे पर तीस बरस पहले की चाहत की परछाई देखकर। यह मैं तुम्हें तो लिख सकती हूँ। मैं दार्शनिक हो उलझ गयी हूँ। मेरा साढ़े पाँच फीट का शरीर, लचकीली देह, इस घर नाम के फ्रेम में जड़ी एक चीज़ है। इससे अलग, वी.के, से अलग मेरी कोई पहचान ही नहीं बची है। वह वी.के., जिससे बँधकर मेरे मन की तरंगे, रोमांस, प्यार मृत होकर किर्च-किर्च गिरता राख बनता गया। इतना कि मुंबई जैसे शहर में भी कोई दूसरा कंधा तलाशने की इच्छा ही नहीं बची थी। बस, तुमसे मिलने के बाद वह स्वच्छंद उड़ता गगन में रुई के बादल की तरह पवन के झोकों के साथ उड़ा करता है। जो तीस बरस पहले छूट गया था, वह मेरा न था, न तुम मेरे हो। दोपहर में वी.के. के पास बिस्तर पर लेटी मैं क्यों भावुक हुई जा रही हूँ। वे अपनी छाती पर हाथ रखे बेलौस सो रहे हैं। अपने टूर के दौरान अपने काम व अपनी बदगुमानियों के बीच न उन्हें मैं याद रही होऊँगी, न यह घर। मैं घर भर में डोलती हुई बेघर होती रही हूँ।

रात में आदतन वी.के. कमर में हाथ डालकर मुझे खींच लेते हैं। मुझे झटका लगता है, जैसे मैं किसी ऊंचाई से इस बिस्तर पर गिर गयी हूँ। जहाँ शरीर है, उसी फ्रेम में, उसी घर में जड़ा मेरा जीवन सच है। मन बावला उड़ता रहे, तो उड़ता रहे। मेरी पसंदगी या नापसंदगी से तो नहीं चलता यह घर। वी.के. के रहने से ही यह घर घर लगने लगता है। मेरा मन बेहद उदास है, पता नहीं क्यों मेरे गालों पर आँसू लुढ़क पड़े हैं। तुम तो जानते हो, मुझे रोना बिल्कुल पसंद नहीं है, फिर भी!

❐❐❐

1. सी ६--१५१ ,ऑर्किड हारमनी, एपलवुड्स टाउनशिप एस.पी . रिंग रोड, शैला शान्तिपुरा सर्कल के निकट, अहमदाबाद -३८००५८ [गुजरात] Mob. 09925534694 ईमेल - Kneeli@rediffmail.com

'स्टेपिंग स्टोन'

–रेखा राजवंशी

प्रताप को सिडनी आए अब तीस साल हो गए हैं। प्रताप अब शायद भूल ही गया है कि गरीबी या कम पैसों में गुज़ारा करना क्या होता है। आज वह पांच गैस स्टेशनों (पेट्रोल पम्पों) का मालिक है। सिडनी के एक अच्छे सबर्ब मोसमन में अपनी पत्नी और दो किशोर बेटों के साथ रहता है। घर में चार गाड़ियां हैं। हफ्ते में एक बार क्लीनर, दो बार कुक और एक बार गार्डनर आता है। इतनी सुविधा वो भी सिडनी जैसे शहर में मिलनी शायद ही किसी को नसीब होती है। प्रताप ने इन सबके लिए कड़ी मेहनत के साथ साथ दिमाग भी लगाया है।

बैकयार्ड की कुशनदार बैठा तो सारा विगत उसकी आँखों के सामने आने लगा। प्रताप सोचने लगा – "आज के दिन यानि एक फरवरी को ही वह सिडनी पहुंचा था। कितना अजीब लगा था यहाँ पहुंचकर। मामा उसे लेने जब एयरपोर्ट पहुंचे, तो खुश थे। चलो परिवार का कोई तो आया। मामा यहाँ दस साल पहले आ चुके थे और अब रेलवे में नौकरी करते थे। मामी को भी स्कूल में गणित पढ़ाने की नौकरी मिल गई थी। वैसे मामी ने शिक्षण की कोई डिग्री नहीं ली थी, परन्तु मामा ने जुगाड़ करके इंडिया से एक फेक डिग्री बनवा ली थी। उसी की वजह से उनकी नौकरी लग गई थी। मेरे सिडनी आने के पहले ही लोन लेकर घर भी खरीद लिया था। उनके दो छोटे बच्चे थे। माँ को उन्होंने ही कन्विंस किया था कि मुझे आगे की पढ़ाई के लिए सिडनी भेज दें। तो आज के दिन वह सिडनी पहुंचा था।

मैं चार भाई बहनों में नंबर दो था। बड़ी बहन वहीं कॉलेज में थी और छोटे भाई बहन स्कूल में थे। पिता पोस्ट मास्टर थे और माँ घर का काम संभालती थीं। किसी तरह सबका गुज़ारा चल रहा था। तभी मामा को लगा कि यदि प्रताप पढ़-लिख ले, तो उसकी अच्छी नौकरी लग जाए तो पूरे घर की हालत संभल जाएगी। अपनी बड़ी बहन को कन्विंस कर उन्होंने ही मुझे यहाँ बुलाया था।

मैंने तलाक के पेपर्स पर साइन कर दिए और दूर एक कंट्री साइड में गैस स्टेशन खरीद लिया। दिल में जो गिल्ट था वह किसी तरह मैं उससे उबर न पाता था। अब मैं अकेला रहता, खुद खाना बनाता, खाता। माँ को मामा ने पहले ही बहुत कुछ बता दिया था।

प्रताप गार्डन की तरफ आया। करीने से लगे इस खूबसूरत गार्डन में भी कुछ बेतरतीबी नज़र आ गई। ये पाम लीव्स बहुत बढ़ गई हैं, ट्रिम करनी पड़ेंगी, सोच कर प्रूनर निकाल लाया।

पर दिमाग की सुई जैसे तीस साल के सफर पर टिक गई। सोचने लगा – ‘‘जब मैंने तीस साल पहले सिडनी आकर मक्वारी यूनिवर्सिटी में इंजिनीयरिंग में प्रवेश लिया था तो उस समय हर भारतीय हर माँ-बाप की यही चाहता था कि उनका बच्चा इंजीनियर या डॉक्टर बने। विदेश जाए और घर में आर्थिक सहायता दे। मुझे याद है कि पहले छह महीने मामा के घर में ही रहा। सब कुछ इतना नया था, अंग्रेजी सारी समझ नहीं आती थी। कई बार असाइनमेंट में भी मामा से मदद लेनी पढ़ती थी। यूनिवर्सिटी में और भी लड़के थे जो मदद कर देते थे। धीरे-धीरे सिस्टम समझ आ रहा था।

सेमस्टर ब्रेक में मामा ने अपने मित्र रोबर्ट की फैक्ट्री में नौकरी लगवा दी थी। वहीँ पहली बार समझ में आया कि अपनी कमाई क्या होती है। जब हफ्ते के अंत में एक सौ पैंतीस डॉलर मेरे अकाउंट में आए, तो मैंने सारे पैसे मामा के हाथ में रख दिए। मामा ने पैंतीस डॉलर मुझे वापस देते हुए मामा कहा ‘इन्हें मैं तेरी माँ को भेज देता हूँ।'

एक फिल्म की तरह सारी घटनाएं मेरी आँखों के सामने से गुजरने लगीं।

ज़ाहिर है मामा को अपनी बहन की आर्थिक दशा का पूरा आभास था। उसे यहाँ बुलाने के पीछे भी तो उनकी यही भावना थी कि मैं जितनी शीघ्र हो पैसे भेजकर उनकी मदद करूँ।अगले सेमेस्टर भी मैं पढ़ाई के साथ-साथ वीकेंड में काम करता रहा, और कुछ नहीं थोड़ा पॉकेट मनी ही मिल जाता।

फैक्ट्री का मालिक रॉबर्ट अच्छा आदमी था, उसकी फैक्ट्री में प्लास्टिक की बोतलें बनती थीं, जो बाद में जूस की दुकान में सप्लाई कर दी जातीं थीं। रोबर्ट की पत्नी जूली उससे अलग सेन्ट्रल कोस्ट के शहर में रहती थी। रॉबर्ट की एक बेटी थी सोफिया, शायद मेरी उम्र की ही होगी। गोरा रंग, बिल्ली आँखें, फूलों की तरह खिलती हुई सुंदरता की मालकिन। फैक्ट्री आती तो पैकेजिंग में लगी रहती। कभी हलो हो जाती। प्रताप उससे फ्रेंडली था तो उससे कभी-कभी बात भी करती। जितनी बात अब तक सोफिया से हुई थी, उससे साफ़ ज़ाहिर था कि सोफिया नार्मल नहीं है। जब हंसती तो हंसती जाती और जब गुस्सा आता तो फैक्ट्री छोड़ कर गाड़ी उठा घर चली जाती। रोबर्ट उसे मनाता रहता, फिर बुदबुदाता, 'क्या होगा मेरी इस बच्ची का?’

एक बार इसी तरह वो गुस्से में फैक्ट्री छोड़ कर निकली तो रोबर्ट ने मुझसे उसके साथ जाने को कहा। तो मैं उसके पीछे भागा, ' सोफिया रुको, कहाँ जा रही हो?'

सोफिया ठिठकी, 'मेरे पीछे मत आओ प्रट' सोफिया के मुंह से ‘प्रट’ सुनना अजीब नहीं लगा क्योंकि सभी मुझे इस नाम से बुलाते थे।

'मगर तुम जा कहाँ रही हो?' मैंने पूछा।

'कॉफी हाउस, वैसे भी नो वन लव्स मी' कहती हुई सोफिया कार की ओर बड़ी।

'क्या मैं तुम्हारे साथ आ सकता हूँ सोफिया?' मैंने ज़ोर दिया।

'क्यों क्या तुम्हें भी कॉफी चाहिए? तो ठीक है आ जाओ' सोफिया बोली।

मैं उसकी कार में बैठा, सोफिया रोने लगी, 'कोई मुझे नहीं चाहता, सब मेरा मज़ाक बनाते हैं। क्या मैं सचमुच पागल हूँ? मैं क्या करूँ?'

मैंने उसका हाथ सहलाया, 'नहीं नहीं, तुम्हारे पिता तुम्हें बहुत चाहते हैं। और हम सब भी।'

सोफिया ने अविश्वास से उसे देखा, 'तुम भी?'

शर्माते हुए मैंने कहा, 'हाँ मैं भी, कौन तुम्हें नहीं चाहेगा? कितनी सुन्दर हो तुम।'

सोफिया ने कार एक गार्डन के सामने रोकी और प्रताप के गले में बांहे डालते हुए बोली, 'डू यू लव मी प्रट?'

मैंने धीरे से खुद को अलग किया और उसे टालते हुए कहा, 'चलो वापस फैक्ट्री चलते हैं।'

उधर सोफिया का यौवन उफान मार रहा था। तेज साँसों से उठते गिरते वक्ष प्रताप के मन में हलचल मचा रहे थे। आखिर वो भी तो इक्कीस साल का ही था। सोफिया अचानक आगे आई और मेरे होंठों को चूम लिया।

इससे पहले कि कुछ और होता मैंने खुद को अलग किया और सोफिया को समझाया, ' सोफिया, यह सब हम शादी के बाद ही करते हैं इंडिया में। चलो वापस चलें।'

सोफिया ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से एक बार मुझे देखा और बात मानकर अलग हट गई। उसे नार्मल और मुस्कुराता देख कर देखकर रोबर्ट बहुत खुश हुआ, बोला, 'प्रताप अब कभी- कभी सोफिया को कम्पनी दे दिया करो, उसकी माँ तो यहाँ है नहीं और मैं फैक्ट्री में बिजी हो जाता हूँ। तुम्हें तो पता है दिमाग से भी पूरी तरह मैच्योर नहीं है। भोली-भाली है, उसका ध्यान रख लिया करो। तुम्हारी तनख्वाह तुम्हें ती रहेगी।'

'क्यों नहीं बॉस, मुझसे जो हो सकेगा, ज़रूर करूँगा।' मैंने उसे तसल्ली दी, रोबर्ट ने मुझे गले लगा लिया।

देखते-देखते यूनिवर्सिटी के दो साल पूरे हो गए थे। मामा, मामी मेरा ध्यान तो रखते, पर छोटे बच्चों के कारण पढ़ाई में खलल पड़ता। मेरे अधिकतर दोस्त फ्लैट लेकर शेयरिंग में रह रहे थे। आने-जाने में भी वक्त लग जाता था। तो मामा से पूछकर अपने दो दोस्तों के साथ यूनिवर्सिटी के पास ही दो कमरों की एक छोटी सी यूनिट में आ गया। मेरे फ्लैट में एक दोस्त था जसविंदर, पंजाब का लम्बा चौड़ा हैंडसम लड़का था। लड़कियां पटाना और काम निकलवाना उसकी आदत में शुमार था। और दूसरा लड़का था डेविड, जो मेरी तरह सीरियस था।

हम तीनों एक ही साथ यूनिवर्सिटी की बस पकड़ते, मैं क्लास के बाद फैक्ट्री में चला जाता। काम के बीच सोफिया के साथ गपशप लगा लेता। कभी सोफिया मेरे साथ कॉफ़ी शॉप में चली जाती। फिर मैं घर जाकर सो जाता। बस यही रूटीन बन गया था मेरा। नौकरी के पैसे से किराया देता और कुछ पैसे बचाकर

माँ-बाप को भी भेज देता। कभी-कभी चिंता सताती कि पढ़ाई के बाद क्या होगा? नौकरी नहीं मिली तो?

जैसे-जैसे चौथे साल का आख़िरी सत्र करीब आ रहा था सभी लड़के जॉब के लिए एप्लीकेशन लगा रहे थे।

मैंने भी कई नौकरियों के लिए अप्लाई किया था, परन्तु कहीं से भी कोई उत्तर नहीं आया था, जी घबरा रहा था। एक दिन मैं डेविड से बातें कर रहा था कि क्या होगा, परमानेंट रेसीडेंसी मिलेगी या नहीं, खाली हाथ वापस इंडिया जाना पड़ेगा तो बाहर आने और पढ़ाई करने का फायदा क्या? तभी जस अपने कमरे से बाहर आकर बोला, 'खोतों, क्या बातें कर रहे हो? परमानेंट रेजिडेंट बनना है तो अपना तो सिंपल फंडा है, एक ऑज़ी लड़की पता कर शादी कर लो, पी आर तो क्या सिटीजनशिप मिल जाएगी।' वो ज़ोर ज़ोर से हंसने लगा।

'पर तू तो इंगेज्ड है न? तूने कहा था कि बड़ी सुन्दर कुड़ी है?' डेविड ने पूछा।

'है तो सही, पर उसे क्या पता चलेगा? आज कोर्ट मैरिज की उधर दो साल बाद डिवोर्स।' जसविंदर हंस रहा था।

मुझसे रुका नहीं गया, 'बड़ा कमीना है तू।'

'और तू तो सबसे बड़ा फ़ट्टू है, इन ऑज़ी लड़कियों के साथ उम्र थोड़ी गुजारनी है। मज़े मारो और फिर छोड़ दो। और फिर मैं शादी करूँगा अपने चाइल्ड हुड लव से, मेरी स्वीटहार्ट शन्नो रानी से। जो बात उसमे है वो यहाँ की गोरियों में कहाँ'

'जब उसे पता लगेगा ये सब तो तुम्हें कैसे माफ़ करेगी।' डेविड की बात सुन कर जसविंदर बोला, 'मना लूंगा अपनी शन्नो को।' बड़े आत्मविश्वास से जस ने कहा।

फिर जाते-जाते पलट कर बोला, 'मैं तो कहता हूँ तुम लोग भी यही करो।'

शीघ्र ही अंतिम परीक्षाएं भी हो गईं। अब क्या हो? डेविड को नौकरी का ऑफर आ गया, जसविंदर ने प्लान के मुताबिक लॉरिन से शादी कर ली और प्रताप? शायद मैं सबसे बेवकूफ, सीधा था तो कुछ सोच न पा रहा था। काम करने में इतना व्यस्त रहा कि गर्ल फ्रेंड कोई बनाई नहीं। नौकरी ऑफर नहीं हुई। अब एक ही चारा था कि जॉब एप्लीकेशन लगाओ और इंतज़ार करो।

अक्सर माँ पूछती कि कहीं नौकरी लगी? पिताजी उससे बड़ी उम्मीदें लेकर बैठे थे। महीने में दो बार मामा के घर जाता तो वे भी यही प्रश्न करते। मन में भविष्य के प्रति अनिश्चितता थी। भारत वापस जाना नहीं चाहता था, और यहाँ रहने के लिए वीज़ा की ज़रुरत थी। जल्दी नौकरी मिल जाएगी यह आशा भी समाप्त हो रही थी। साल के अंत में नौकरी मिलती भी कहाँ है? सोचते हुए सर दर्द से फटने लगता।

यहाँ रहने के लिए काम करना ज़रूरी था। परीक्षा की वजह से कुछ दिन से फैक्ट्री नहीं गया था, अब जब तक हूँ यही करना होगा। सोचते हुए मैं घर से निकला, बस पकड़ी और फैक्ट्री पहुँच गया।

देखते ही रॉबर्ट बोला, 'हे मेट! तुम कहाँ थे? एग्ज़ाम्स ठीक हो गए?'

मैंने बुझे मन से कहा, 'यस मेट। आल गुड। नौकरी ढूंढ रहा हूँ।'

'ज़रूर मिलेगी। डोंट यू वरी।' कहते कहते रोबर्ट ने उसे धौल मारी।

जैसे ही मैं अंदर गया, सोफिया अपने कमरे से भागी आई, 'हे प्रट, लॉन्ग टाइम, नो सी।' वह हंस कर मुझे किस कर रही थी कि अचानक मेरे दिमाग में कुछ कौंधा। एक आईडिया.... ऐसा आइडिया जो मेरी सभी चिंताओं को दूर कर सकता था। मैंने सोफिया से हिम्मत करके कहा, 'आई मिस्ड यू टू सोफ़िया।'

सोफिया ने मेरी तरफ देखा, मैंने सोफिया की तरफ शायद पहली बार इतने इंटरेस्ट से देखा। हम दोनों की आँखें मिली, सोनिया की भूरी आँखे ख़ुशी से चमक रहीं थी, उसका मासूम दिल धड़क रहा था, मैंने मज़बूती से उसका हाथ पकड़ा और कहा, 'शाम को काम के बाद कॉफ़ी के लिए चलें?'

सोफिया ने कहा, 'श्योर। वी विल गो' ख़ुशी-ख़ुशी वह अंदर भाग गई।

शाम को रोबर्ट से कहकर वो दोनों कॉफी के लिए गए। रोबर्ट को मुझ पर पूरा विश्वास था। कार में सोफिया की ख़ुशी देखते ही बनती थी। बैठते ही उसने मेरे हाथ पर हाथ रख दिया। एक हाथ से गाड़ी चलाते-चलाते कहने लगी, 'प्रट, आई लव यू'

मैंने भी उसका हाथ चूमा और बोला, 'आई लव यू टू'

हाथ में हाथ थामे हम कॉफी हाउस पहुंचे, उसका गाल चूम कर मैंने धीरे से पूछा, 'शादी करोगी मुझसे?'

सोफिया के दिल की धड़कन जैसे रुक गई, शर्म से गाल गुलाबी हो गए, आँखों में लाल डोरे तैरने लगे। पहले ही बहुत भावुक किस्म की लड़की थी। इतनी बड़ी खबर पर आँखों में आए। सोफिया एक ऐसी लड़की जिसका दिल पानी के तरह स्वच्छ था, जिसके मन में मेल तो क्या किसी के लिए दुर्भावना भी न थी, सुन्दर ऐसी कि मोनालिसा तस्वीर से उत्तर कर उसमें समा गई हो। सच है जब भगवान् इतना कुछ देता है, तो कुछ कमी छोड़ ही देता है। सोफिया मन से बहुत भोली और भावुक थी, दुनियादारी कुछ समझती न थी।

हम दोनों कुछ देर आपस में लिपटे बैठे रहे। जाने कितनी देर तक किस करते रहे, एक दूसरे को सहलाते रहे। मन जब बेकाबू होने लगा तो मैं उठ खड़ा हुआ, 'चलो रॉबर्ट से तो बात करें।'

लौट कर मैंने रॉबर्ट से सोफिया का हाथ माँगा, 'कैन आई मैरी योर डॉटर?'

'व्हाट...? माई सन तुमने क्या कहा? फिर से कहो माई सन।' रॉबर्ट जैसे विशवास नहीं कर पा रहा था।

'मैं सोफिया से प्यार करता हूँ, क्या मैं उससे शादी कर सकता हूँ?' मैंने दोहराया।

रॉबर्ट ने आगे बढ़कर उसे गले से लगा लिया, 'यू डोंट नो माय सन, तुमने मेरी कितनी बड़ी परेशानी हल कर दी। गॉड ब्लेस यू माय सन।'

उसने आगे बढ़कर सोफिया का हाथ मुझे पकड़ाते हुए कहा, 'गॉड ब्लेस यू बोथ। ईश्वर तुम्हें सारी खुशियां दे।'

मामा को पता लगा तो उनका फोन आया, 'प्रताप पुत्तर, तुमने जो किया सोचकर ही किया होगा। तुम्हें सोफिया के बारे में पता ही होगा। एक बार फिर सोच लो, रॉबर्ट मेरा बहुत अच्छा दोस्त है। कुछ ऊँच-नीच न हो इसका ध्यान रखना।'

मैंने मामा को तसल्ली दी, बस इतना अनुरोध ज़रूर किया कि अभी वीज़ा औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए कोर्ट मैरिज ही करेंगे, तो इंडिया में किसी को न बताएं। बाद में जब इंडियन रीति रिवाज़ से शादी करेंगे तो पूरे परिवार को बुला लेंगे। जल्द ही दोनों की शादी की डेट तय हुई और कोर्ट मैरिज हो गई। रॉबर्ट ने दोनों को हनीमून के लिए इटली भेजा।

कुछ महीने बाद मुझे ऑस्ट्रेलियन सिटीज़नशिप के साथ-साथ नौकरी भी मिल गई। सब बहुत खुश थे, सोफिया मुझे सर आँखों पर रखती। रॉबर्ट कभी नई घड़ी ले आता कभी नए ब्रांडेड कपड़े। शादी की पहली वर्षगाँठ पर उनको गाड़ी भेट की, 'माय सन, आय एम सो हैप्पी, तुमने हमारी सोफिया को जितनी ख़ुशी दी है, कोई नहीं दे सकता, मैं तुम्हारे लिए कुछ भी कर सकता हूँ।'

पर सिर्फ मैं जानता था कि सब कुछ ठीक होकर भी ठीक नहीं था। माँ बाप को इसकी भनक भी न थी कि मैं शादी-शुदा हूँ। इधर सोफिया का बचपना देख मैं तंग आने लगा था। जब नाराज़ होती तो तो घर का सारा सामान तहस-नहस कर देती। घंटों उसे मनाना पड़ता। पर जब खुश होती तो बच्चों सी तालियां बजाने लगती। मानसिक रूप से हमारा कोई मैच न था। न कोई बात ठीक से समझती, न बता पाती। बस सेक्स एन्जॉय करती। ऐसा ऐसा लगने लगा था कि मैंने किसी सेक्स डॉल से उसने शादी कर ली हो।

कब तक चलेगा यह नाटक? मेरे मन में सोफिया के प्रति जो प्रेम था धीरे धीरे चिढ़ में बदल रहा था। मैं नौकरी से देर से आता तो सोफिया रोती मिलती, अपना ऑफिस का काम कर रहा होता तो आकर छेड़खानी करने लगती। एक दिन खीज कर मैंने कह ही दिया, 'सोफिया, आय एम फेड अप विथ यू (मैं तुमसे तंग आ गया हूँ), प्लीज फॉर गॉड सेक, लीव मी अलोन (भगवान के लिए मुझे अकेला छोड़ दो), मुझे नहीं मालूम मैंने तुमसे शादी क्यों कर ली।'

इतना कहना ही था कि हतप्रभ सी सोफिया ने मुझे देखा ज़ोर से रोती अपने कमरे में भागी। इससे पहले कि मैं कुछ करता वो अपना बैग उठा, कार में बैठ अपने पिता के घर निकल गई।

मुझको पता था उसने सोफिया के मासूम दिल को चोट लगाई है और वह मुझे कभी माफ़ नहीं करेगी। पर मन में किसी कोने से आवाज़ आई, 'चलो अच्छा हुआ उससे पीछा छूटा। आखिर कब तक उसे झेलता मैं? माँ से क्या कहता? रूप की पारी तो लाया हूँ पर दिमागी हालत ठीक नहीं है।'

एक घंटे के बाद ही रॉबर्ट का फोन आया, 'माय सन, ये तुमने अच्छा नहीं किया। मेरी बेटी का दिल दुखाया।'

मैंने कुछ ज़्यादा कहना ठीक न समझा। ऑफिस के काम में बिजी हो गया, सोफिया गई तो एक हफ्ते तक आई नहीं। मैंने तो जैसे उससे पीछा छुड़ाने की ठान ही ली थी।

उस दिन ऑफिस में बैठा था कि मामा का फोन आया, 'प्रताप मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थी। मैं सोच भी नहीं सकता था कि तुम मेरे दोस्त रॉबर्ट की बेटी के साथ यह हरकत करोगे।'

'मामा, ऑफिस का बहुत काम है, मैं हर वक्त उसके आगे पीछे तो नहीं घूम सकता। बस कुछ कह दिया तो नाराज़ हो गई।' मैंने मामा को सफाई दी।

'बात यह नहीं है, तुम भी और इंडियंस की तरह निकले। जब तुम उससे शादी के लिए मान गए थे तभी से मुझे तुम पर शक था। सिटीज़नशिप और नौकरी मिलते ही सोफिया बुरी लगने लगी। अब उसे छोड़ देना चाहते हो।' मामा गुस्से में कह रहे थे।

'नहीं मामा, मैं उसे मना लाऊंगा' मैंने बुझे मन से कहा।

'तुम समझते क्या हो? तुमने मासूम लड़की का ट्रस्ट तोड़ा है। रॉबर्ट का फोन आया था, वो कभी भी सोफिया को तुम्हारे पास नहीं भेजेगा।' मामा ने कहा।

'नहीं मामा, ऐसा नहीं है। मैं उसे मन लूंगा।' कहने को तो मैंने कह दिया पर मुझे पता था कि मैं ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा। मैं एक इमोशनली चैलेंजिंग लड़की के साथ ज़िन्दगी गुजरने को तैयार नहीं था।

शायद कुछ दिन तक रॉबर्ट ने मेरे आने और माफ़ी मांगने का इंतज़ार किया और फिर टूटे दिल से डाइवोर्स के पेपर भेज दिए।

मामा ने सुना तो फोन पर सिर्फ इतना कहा, 'प्रताप एक बच्चे से बढ़ कर तुम्हारे लिए सब कुछ किया और तुमने...? तुमने मेरा विशवास तोड़ा, रॉबर्ट को धोखा दिया और उस मासूम सोफिया के दिल के टुकड़े टुकड़े कर दिए। समझ लो कि मेरे लिए तुम मर गए।'

मैंने तलाक के पेपर्स पर साइन कर दिए और दूर एक कंट्री साइड में गैस स्टेशन खरीद लिया। दिल में जो गिल्ट था वह किसी तरह मैं उससे उबर न पाता था। अब मैं अकेला रहता, खुद खाना बनाता, खाता। माँ को मामा ने पहले ही बहुत कुछ बता दिया था। जब माँ ने पूछा तो मैंने कुछ भी नहीं छिपाया। जल्द ही बड़ी बहन की शादी हो गई। माँ कुछ दिन के लिए ऑस्ट्रेलिया आई तो मुझे समझाया, 'देखो प्रताप, इंडिया में किसी को इस बारे में नहीं पता। तुम्हारा और सोफिया का साथ बस इतना ही था, अब अपनी ज़िन्दगी को कब तक रोकोगे। मैं चाहती हूँ तुम अब अपना घर बसा लो। और हाँ छोटे को भी यहीं बुलाकर पढ़ा लेते तो उनका जीवन बन जाता।'

मैंने माँ की बात समझी पर सोफिया मन के कोने में कहीं अब भी थी, एक अपराध भाव भी था। पर छोटे भाई की शिक्षा का प्रंबंध कर दिया। छोटा भाई अगले साल सिडनी के एक विश्वविद्यालय में आ गया। हर वीकेंड मेरे पास आता और बड़े भाई का फ़र्ज़ निभाते हुए मैं उसे बाहर घुमाने ले जाता, कभी शॉपिंग करा देता, पढ़ने को उत्साहित करता रहता। मुझे भी जीने का कुछ मकसद मिला। जब तीन साल बाद जब इंडिया गया तो माँ ने अपनी सहेली अमिता आंटी की बेटी मेघा से मिलाया। मेघा एक इंटेलीजेंट, पढ़ी लिखी, एवरेज लुकिंग लड़की थी। जल्द ही हम दोनों घुल-मिल गए, मैंने मेघा से कुछ भी न छिपाया। मेघा

ने धैर्य से मेरी बात सुनी और यही कहा, 'प्रताप जो हो गया उसे तो बदल नहीं सकते। अच्छा लगा कि तुमने मुझ पर ट्रस्ट किया।' जल्दी ही हमारी शादी हो गई और हमने अपनी नई ज़िन्दगी शुरू की।

कुछ सालों में छोटे भाई संदीप ने मेडिसन की पढ़ाई पूरी की और डॉक्टर बन गया। छोटी बहन की शादी यहीं सिडनी में संदीप के डॉक्टर दोस्त से हो गई। कुछ वर्षों बाद माँ, पिताजी भी सिडनी आ गए। पत्नी, बच्चों और भाई-बहन और माता-पिता से भरे परिवार में रहकर मैं भूल चुका था कि सोफिया भी कभी मेरी ज़िन्दगी का एक हिस्सा थी। अपनी व्यस्त ज़िन्दगी में मुझे कभी यह जानने की ज़रुरत ही महसूस नहीं हुई कि सोफिया कहाँ है और कैसी है। वह सोफिया, जिसे उसने 'स्टेपिंग स्टोन' की तरह ही इस्तेमाल किया था, क्या मुझे भूल पाई है या माफ़ कर पाई है?

और उम्र के इस पड़ाव पर जब मेरे पास सब कुछ है अचानक सोफिया जैसे मेरी आँखों के सामने आकर खड़ी हो गई है और अपनी मासूम आँखों से देखते हुए मुझसे प्रश्न पूछ रही है, 'व्हाई प्रट व्हाई मी?' और मैं निःशब्द, निरुत्तर सोच रहा हूँ कि क्या वाकई मैंने अपने दिमाग के कम्प्यूटर से सोफिया की फाइल पूरी तरह डिलीट कर दी थी?

❒❒❒

1. प्रसिद्ध लेखिका ऑस्ट्रेलिया

गालीना वासी-लिएव्ना ज़िंकोवा की कुछ यादें

– सीताराम गुप्ता

वर्ष 1979-80 की बात है। मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में रूसी भाषा और साहित्य का अध्ययन कर रहा था। गालीना वासीलिएव्ना ज़िंकोवा हमें रूसी भाषा और साहित्य पढ़ाती थीं। वो ग्वायर हॉल के पास वाले विदेशी भाषा के प्राध्यापकों के गेस्ट हाउस के एक रूम में रहती थीं। मैं अक्सर उनसे मिलने के लिए उनके गेस्ट हाउस स्थित रूम पर जाता रहता था। वहाँ कई देशों के विभिन्न भाषाओं के प्राध्यापक अपने परिवारों के साथ रहते थे जिनमें सबसे ज़्यादा संख्या रूसियों की थी। गालीना अकेली रहती थीं। एक दिन जब मैं गालीना से मिलने के लिए गया तो पाया कि उनके रूम पर ताला लगा हुआ है। वहाँ बरामदे में कई रूसी बच्चे थे जो खेल में मस्त थे। मैं उन बच्चों के निकट गया और उनसे कहा ज़द्राव्स्त्वुयचे अर्थात् नमस्कार। कुछ बच्चों ने भी ज़द्राव्स्त्वुयचे कहा और बिना मेरी ओर ध्यान दिए अपने खेल में लगे रहे। मैंने उनसे रूसी भाषा में पूछा, '' क्या तुम बता सकते हो कि गालीना कहाँ गई हैं?'' एक छह-सात साल की लड़की ने रूसी भाषा में ही जवाब दिया, '' हम आपकी भाषा नहीं समझते।'' '' पर मैं तो तुम्हारी रूसी भाषा में ही बात कर रहा हूँ ,'' मैंने सभी बच्चों को ध्यानपूर्वक देखते हुए कहा।

मेरे यह कहने पर उन बच्चों को अपनी भूल का अहसास हुआ और उन्होंने खेल को छोड़कर अपनी हथेलियों से अपनी-अपनी आँखे ढाँप लीं और हो ओ, हो ओ की आवाज़ निकालते हुए कुछ दूरी पर जाकर खड़े हो गए और वहाँ से अपनी आँखों पर रखीं कोमल-कोमल सी उँगलियों के बीच से ऐसे देख रहे थे मानो कह रहे हों कि भई हमने तो कभी सोचा भी नहीं था कि हमारे सिवाय यहाँ अन्य कोई रूसी में बात करने वाला हो सकता है इसलिए हमने आपकी बात सुनी ही नहीं पर अब क्या किया जा सकता है? जो हो गया सो हो गया। आगे ध्यान रखेंगे। जब भी छोटे बच्चों से बात कर रहा होता हूँ और वो कोई ऐसी ही बालसुलभ भूल कर बैठते हैं तो प्रायः ये घटना याद आ जाती है और साथ ही अपनी प्रिय रूसी प्राध्यापिका गालीना वासीलिएव्ना ज़िंकोवा

गालीना से संबंधित एक और घटना याद आ रही है जो अत्यंत रोचक है। गालीना को फूल बहुत पसंद थे। मैं जब भी उनसे मिलने जाता तो कोई न कोई मिष्ठान्न अवश्य ले जाता था। वो उन्हें पसंद करती थीं लेकिन साथ ही कहती थीं कि कमरे में सजाने के लिए उन्हें फूल चाहिएँ। उन दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय के आसपास कमला नगर अथवा बैंग्लो रोड पर कहीं भी फूल नहीं बिकते थे।

की भी जिनके सान्निध्य में दो सालों तक मैंने बहुत कुछ सीखा। वास्तव में इस दौरान गालीना से मुझे बहुत लगाव हो गया था। अन्यथा मत लीजिएगा। गालीना मेरी माँ की उम्र की थीं और वो भी मुझे पुत्रवत स्नेह करती थीं।

मैं जब भी गालीना से मिलने जाता था तो वो हमेशा कॉफी पिलाती थीं। वो ब्लैक कॉफी पीती थीं लकिन मुझे ब्लैक कॉफी पसंद नहीं थी। पसंद की बात छोड़िए मैं ब्लैक कॉफी पी ही नहीं पाता था। जब उन्हें इस बात का पता चला तो मैं जब भी उनसे मिलने जाता था वो दूध मँगवाकर रखती थीं और दूध से कॉफी तैयार करती थीं। हमारी चर्चा प्रायः रूसी साहित्य, संस्कृति, कला, लोक-जीवन, फिल्मों आदि पर केंद्रित रहती थी। हम घंटों विभिन्न विषयों पर चर्चा करते रहते। कई दौर कॉफी और खानपान के हो जाते। हमारी चर्चा में कभी तल्ख़ी या वैमनस्य उत्पन्न नहीं हुआ। मैं स्वभाव से थोड़ा ज़िद्दी रहा हूँ और ग़लत बात का विरोध करने में देर नहीं करता लेकिन गालीना ने भारत अथवा भारतीय संस्कृति के बारे में कभी कोई ऐसी बात कही ही नहीं जिसका मुझे दुख होता और विरोध करना पड़ता। भारतीय संस्कृति को जानने-समझने में उनकी दिलचस्पी थी। यहाँ आने के कुछ दिन बाद ही वो योग विषयक एक सचित्र पुस्तक ख़रीद कर ले आईं और रोज़ योगासन करती थीं। आम व तरबूज़ उन्हें ख़ूब पसंद थे। यद्यपि वो अकेली रहती थीं लेकिन गर्मियों के दिनों में उनका फ्रिज आम और तरबूज़ों से हमेशा भरा रहता था। तरबूज़ भी बड़े-बड़े। दस-दस बारह-बारह किलो के। उन दिनों दिल्ली में छोटे आकार के तरबूज़ बहुत कम देखने में आते थे।

उस समय दिल्ली विश्वविद्यालय में जितने भी सोवियत संघ से आए हुए रूसी प्राध्यापक या प्रोफेसर थे उनमें से अधिकांश को अंग्रेज़ी नहीं आती थी लेकिन गालीना इसका अपवाद थीं। उन्हें अंग्रेज़ी भी बहुत अच्छी तरह से आती थी लेकिन हम प्रायः रूसी भाषा में ही बातचीत करते थे। गालीना को हिन्दी फिल्में देखना भी बहुत पसंद था विशेष रूप से राजकपूर की फिल्में। इसी दौरान मेरा विवाह भी हुआ था। विवाह से पूर्व मैंने भावी पत्नी आशा को गालीना से मिलवाया था। वो अत्यंत प्रसन्न हुई थीं आशा से मिलकर। वो आशा को आशा नहीं अपितु नाज्या या नाज्येज़दा कहकर पुकारती थीं जो आशा शब्द का रूसी अनुवाद है। हम तीनों प्रायः मिलते थे और हमने एक साथ कई हिन्दी फ़िल्में भी देखीं। आशा के प्रति मेरे व्यवहार में उन्हें अपने मानकों के अनुसार जहाँ कहीं भी असामान्य लगता था वो मुझे न केवल फ़ौरन टोक देती थीं अपितु डाँट भी देती थीं।

गालीना ने राजकपूर की फिल्म आवारा के गीत 'आवारा हूँ ....' का रूसी अनुवाद 'ब्राज्यागा या ...'' मुझे कई बार गाकर सुनाया। एक बार उन्होंने मुझे राजकपूर की फिल्म के एक गीत की दो धुनें सुनाईं और कहा कि उन्हें इसका रिकार्ड चाहिए। गालीना को फिल्म का नाम नहीं याद आ रहा था। जब मैंने उनसे पूछा कि इस गाने में क्या विशेषता है तो उन्होंने बतलाया कि इस गाने में एक भारतीय धुन है और एक रूसी धुन है। इस आधार पर मैंने रिकार्ड खोजने की कोशिश की पर संभव न हुआ। काफी दिनों के बाद न जाने कैसे (अब याद नहीं) एक दिन मैं वो रिकार्ड लाने में सफल हो गया। वो रिकार्ड था फिल्म मेरा नाम जोकर का। मैंने उनकी पसंद के और अपनी पसंद के कई रिकार्ड और पुस्तकें उन्हें भेंट में दीं। उन्होंने भी मुझे कई दर्जन पुस्तकें और रूसी संगीत के रिकार्ड दिए। लगभग एक दशक तक मैं प्रायः उन्हें सुनता था। बाद में मेरा रिकार्ड प्लेयर

ख़राब होने और इसका प्रचलन समाप्त होने से ये सिलसिला भी टूट गया। आज भी उनके दिए कुछ रिकार्ड मेरे पास सुरक्षित हैं।

गालीना ग्वायर हॉल के पास वाले विदेशी भाषा के प्राध्यापकों के जिस गेस्ट हाउस के रूम में रहती थीं वहाँ सभी भाषाओं के प्राध्यापक रहते थे जिनमें से कुछ अकेले थे तो कुछ परिवार के साथ लेकिन उनमें रूसी भाषा के प्राध्यापकों की संख्या सबसे अधिक थी। स्वीडिश, पोलिश, रोमानियन, सर्बो-क्रोशियन आदि यूरोपीय भाषाओं का सिर्फ़ एक एक प्राध्यापक वहाँ रहता था। मुझे अच्छी तरह से याद नहीं आ रहा है लेकिन वहाँ पोलिश अथवा रोमानियन दंपति का एक पाँच-छह साल का बच्चा था जो चार भाषाएँ बोल लेता था। घर में वह अपने माता-पिता के साथ पोलिश अथवा रोमानियन भाषा में बात करता था, उसकी आया हिन्दी भाषी थी अतः उसके साथ हिन्दी बोलता था, वह अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूल में पढ़ने जाता था इसलिए अंग्रेज़ी भी अच्छी बोल लेता था और क्योंकि वह अधिकांश समय रूसी बच्चों के साथ रहता और खेलता था इसलिए रूसी भाषा तो और भी अच्छी तरह से जान गया था। जैव विविधता की तरह ही भाषिक एवं सांस्कृतिक विविधता भी मनुष्य के विकास एवं अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।

अरुणाचल प्रदेश की राजधानी ईटा नगर के राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर अमरेंद्र त्रिपाठी अपने एक लेख में बताते हैं कि अरुणाचल प्रदेश भाषायी विविधता का अद्भुत नमूना है। 'मोनो लिंग्वल' समाज बनने की ओर बढ़ रहे भारतीयों के लिए यह एक प्रेरणा भी है और प्रमाण भी कि एक अरुणाचली कम से कम पाँच भाषाएँ बोलता है। यहाँ की 'आदी' जनजाति के एक बच्चे को किसी ने नहीं कहा कि तुम पाँच भाषाएँ सीखो। वह 'आदी' भाषा बोलता है क्योंकि उसकी माँ 'आदी' भाषा बोलती है। वह 'गालो' भाषा बोलता है क्योंकि उसका मित्र 'गालो' भाषा बोलता है। वह 'असमिया' भाषा बोलता है क्योंकि उसके स्कूली मित्र 'असमिया' बोलते हैं। वह 'हिन्दी' भाषा बोलता है क्योंकि उसके शिक्षक 'हिन्दी' बोलते हैं। वह 'अंग्रेज़ी' बोलता है क्योंकि उसकी किताबों की भाषा 'अंग्रेज़ी' है। और यह सब करते हुए न तो उसको कोई बोझ महसूस होता है और न उसके मन में कोई दुराग्रह ही पैदा होता है।

भारत जैसे विशाल, प्राचीन और लोकतांत्रिक देश की भाषायी ज़रूरत इससे कम में पूरी भी नहीं होती। 'त्रिभाषा सूत्र' पर जूझ रहे और केवल अपनी ही भाषा के साम्राज्यवादी विस्तार के दुराग्रह के साथ जी रहे भारतीयों के लिए अरुणाचल एक मिसाल है। अरुणाचल प्रदेश भारत का एकमात्र ऐसा अहिन्दी भाषी प्रदेश है जिसकी संपर्क भाषा हिन्दी है। 'अरुणाचली हिन्दी' के रूप में एक नई हिन्दी का विकास भी यहाँ हो रहा है। यहाँ के साहित्यकार भी अपनी स्थानीय भाषाएँ छोड़कर 'अरुणाचली हिन्दी' में साहित्य रचना कर रहे हैं। हिन्दी के लिए यह बहुत बड़ी बात है। हिन्दी वालों को भी दूसरी भाषाओं की उपेक्षा न करके अधिकाधिक दूसरी भाषाओं के सीखने और व्यवहार में लाने पर बल देना चाहिए। यह हिन्दी के विकास में सहायक ही होगा। कुछ समय पूर्व मैं कुछ दिन के लिए गुवाहाटी और शिलाँग गया था। वहाँ भी प्रायः सभी लोग हिन्दी अच्छी तरह से समझ और बोल रहे थे।

पिछले दिनों मैंने एक चीज़ और अनुभव की। मैंने अपनी एक पुस्तक के अनुवाद के लिए कई भारतीय

भाषाओं के अनुवादकों से बातचीत की। अधिकांश अनुवादकों ने कहा कि वो अपनी भाषा से हिन्दी में तो अनुवाद कर सकते हैं लेकिन हिन्दी से अपनी भाषा में नहीं। मुझे ये जानकर आश्चर्य हुआ। मेरे विचार से किसी दूसरी भाषा से अपनी मातृ भाषा में अनुवाद करना सरल होना चाहिए क्योंकि हम अपनी मातृ भाषा की प्रकृति को अपेक्षाकृत अधिक अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आज देश में हिन्दी जानने वालों की संख्या ही नहीं अपनी मातृ भाषा से भी अधिक अच्छी तरह हिन्दी जानने वालों की संख्या भी बहुत अधिक है। कुछ लोग हिन्दी अच्छी तरह से समझ और बोल लेते हैं लेकिन इसके बावजूद भी कहते हैं कि उन्हें हिन्दी नहीं आती अथवा कम आती है तो ये उनकी भूल है। मेरा मानना है कि जो व्यक्ति किसी भी भाषा को समझ और बोल सकता है उसे उसको लिखना भी सीख लेना चाहिए क्योंकि भाषा के मुक़ाबले में किसी भाषा की लिपि को सीखना बहुत ही आसान है। हिन्दी ही नहीं सभी भाषाओं के लिए ये तथ्य सही है।

रूसी भाषा प्रारंभ करने के एक साल बाद मैं सर्बो-क्रोशियन भाषा की ओर भी आकर्षित हुआ। सर्बो-क्रोशियन यूगोस्लाविया नामक देश की भाषा है। उस समय यूगोस्लाविया का विघटन नहीं हुआ था। बाद में सोवियत संघ और यूगोस्लाविया दोनों का ही विघटन हो गया और बहुत सारे नए राष्ट्र बन गए। सर्बो-क्रोशियन भाषा की एक विशेषता ये है कि इसे अंग्रेज़ी भाषा के लिए प्रयुक्त रोमन लिपि में भी लिखा जाता है व रूसी के लिए व्यवहृत सिरिलिक लिपि में भी लिखा जाता है। उस वर्ष विश्वविद्यालय में सर्बो-क्रोशियन भाषा की जो नई प्राध्यापक आई थीं वो भी गालीना के पास ही विदेशी भाषा के प्राध्यापकों के गेस्ट हाउस के एक रूम में रहती थीं और गालीना के साथ ही फैकल्टी आती-जाती थीं। उनका नाम था रादमिला गिकिच। रादमिला गिकिच एक युवा लेखिका भी थीं। गालीना के कारण उनसे भी अच्छा परिचय हो गया और इस परिचय के साथ ही रादमिला से सर्बो-क्रोशियन भाषा सीखने का सिलसिला भी प्रारंभ हो गया। रादमिला को अंग्रेज़ी नहीं आती थी लेकिन वो रूसी समझ लेती थीं।

कुछ दिनों बाद रादमिला गिकिच की एक परिचित लेखिका उनके पास आकर रुकीं। उनका नाम था दारा सेकुलिच। मुझे पता लगा कि दारा सेकुलिच सर्बो-क्रोशियन भाषा की बहुत बड़ी लेखिका थीं। उस समय सर्बो-क्रोशियन भाषा के सबसे बड़े लेखक इवो आंद्रिच माने जाते थे जिन्हें साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिल चुका था। इवो आंद्रिच के बाद दारा सेकुलिच ही सर्बो-क्रोशियन की दूसरे नंबर की रचनाकार मानी जाती थीं। वे नोबेल पुरस्कार पाने वालों की संभावित सूची में भी कई बार रहीं। ये बातें मुझे रादमिला से पता चलीं। मैंने उनसे मिलने की इच्छा व्यक्त की। रादमिला ने उनसे बात करके मुझे बतलाया कि मैं उनसे दस मिनट बात कर सकता हूँ। मैं बड़े संकोच के साथ उनसे मिलने गया। उस समय उन्हें बुज़ुर्ग कहा जा सकता था। वे बेडरूम में थीं और उन्होंने मुझे वहीं बुलवा लिया। औपचारिक अभिवादन के बाद मैं एक कुर्सी पर बैठ गया। मैं सर्बो-क्रोशियन भाषा में बात नहीं कर सकता था लेकिन अच्छी बात ये हुई कि दारा सेकुलिच को रूसी बहुत अच्छी तरह से आती थी। बातों का सिलसिला प्रारंभ हुआ तो कैसे ढाई-तीन घंटे बीत गए पता ही नहीं चला।

यदि वो चर्चा रिकॉर्ड कर ली जाती अथवा लिख ली जाती तो निस्संदेह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होती। वास्तव में मुझे इन बातों के महत्त्व का पता ही नहीं था। शायद आज भी नहीं है और है तो बहुत कम है। कुछ देर बाद हम ऐसे बातचीत कर रहे थे जैसे बहुत पुराने परिचित हों। वैसे तो बहुत सारे विषयों पर बातचीत हुई लेकिन

रूसी साहित्य पर सबसे ज़्यादा बातें हुईं। एक अल्पज्ञ हिन्दी भाषी लड़का और सर्बो-क्रोशियन भाषा की एक प्रसिद्ध लेखिका का रूसी साहित्य पर बात करना उस समय रूसी भाषा के महत्त्व को अवश्य रेखांकित करता है। दारा सेकुलिच ने मुझसे कहा कि उन्होंने कभी किसी लड़के से इतनी लंबी बातचीत नहीं की है। उन्होंने ये भी कहा कि उन्हें मुझसे बातचीत करना बड़ा अच्छा लगा क्योंकि मुझमें स्थितियों को समझने की क्षमता है। उन्होंने मेरे विषय में जो प्रशंसात्मक शब्द कहे वे मुझे याद नहीं और साथ ही ये भी याद नहीं कि मेरे लिए ऐसे प्रशंसात्मक अथवा उत्साहवर्धक शब्दों का प्रयोग कभी किसी ने किया हो।

गालीना से संबंधित एक और घटना याद आ रही है जो अत्यंत रोचक है। गालीना को फूल बहुत पसंद थे। मैं जब भी उनसे मिलने जाता तो कोई न कोई मिष्ठान्न अवश्य ले जाता था। वो उन्हें पसंद करती थीं लेकिन साथ ही कहती थीं कि कमरे में सजाने के लिए उन्हें फूल चाहिएँ। उन दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय के आसपास कमला नगर अथवा बैंग्लो रोड पर कहीं भी फूल नहीं बिकते थे। एक दिन मैंने देखा कि उनके कमरे में एक फूलदान में कुछ फूल सजे हुए थे। मैंने जब ये पूछा कि फूल कहाँ से मँगवाए तो पहले तो वो काफी देर तक हँसती रहीं और फिर कहा कि गाना गाकर पाए हैं। कैसे? उन्होंने बतलाया कि सामने के कई पार्कों में बहुत सुंदर-सुंदर फूल हैं लेकिन माली तोड़ने नहीं देते। शाम के समय हम सभी गेस्ट हाउस वाले इन पार्कों में चले जाते हैं ओर वहाँ जाकर नाचने-गाने लगते हैं। हमारा नाच-गाना देखने के लिए आसपास के सभी लोग और माली वगैरा हमारे चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं।

गलीना ने आगे बतलाया कि जब सब लोग नाच-गाना देखने में मस्त हो जाते हैं तो हममें से कुछ लोग चुपचाप जाकर कुछ फूल तोड़कर अपने पास रखे लंबे से थैले में रख लेते हैं और घर आकर उन्हें फूलदान में सजा देते हैं। वो फूलों को हाथों से नहीं तोड़ती थीं अपितु कैंची की मदद से सावधानी से उन्हें काटती थीं। आज दिल्ली में हर जगह खूब फूल मिलते हैं। काश! आज वो यहाँ होतीं। उनके लिए फूलों की कमी नहीं रहने देता। वो प्रायः मुझसे पूछती थीं कि मेरी माँ मुझे क्या कह कर पुकारती हैं? मैं भी तुम्हें उसी नाम से पुकारूँगी। लेकिन मेरा घर का कोई दूसरा नाम नहीं था। उनकी उम्र ठीक उतनी ही थी जितनी मेरी माँ की। मेरी माँ पिचयानवे वर्ष की हो चुकी हैं। गालीना के जाने के बाद भी मैं रूसी पढ़ता रहा लेकिन उन दो वर्षों के बाद गालीना से कभी नही मिल पाया। कुछ समय के उपरांत पत्र-व्यवहार भी समाप्त हो गया पर उनकी याद न आई हो ऐसा कभी नहीं हुआ। माँ की उम्र के हिसाब से कल्पना कर लेता हूँ कि गालीना अब कैसी दिखलाई देती होंगी, कैसे चलती होंगी, कैसे बोलती होंगी। उन्हें भूल पाना असंभव है।

❒❒❒

ए.डी.-106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-110034 मो. नं0 9555622323 Email: srgupta54@yahoo.co.in

'ब्रह्मपुत्र में विलीन होता माँझुली'

–शालिनी मिश्रा

प्रस्तुत शोध पत्र के अन्तर्गत उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' के माध्यम से ब्रह्मपुत्र नद द्वारा बने विश्व के सबसे बड़े नदी द्वीप माझुली की लोक संस्कृति को दर्शाया गया है। लोक संस्कृति किसी भी देश अथवा समुदाय की पहचान है अतः लोक संस्कृति की रक्षा मानवता की रक्षा के समतुल्य ही है। पिछले कुछ दशकों में ब्रह्मपुत्र में आई भयंकर बाढ़ एवं भूकटाव से माझुली का क्षेत्रफल बहुत तेजी से घटा है , माना जा रहा है कि आगामी तीन चार दशकों में यह द्वीप पूर्णतया नदी द्वारा विलीन कर लिया जायेगा। जो कि यहाँ रह रहे जन-जीवन एवं संस्कृति के लिए भारी संकट का विषय है अतः समय रहते इसका संरक्षण सरकार द्वारा विचारणीय है।

बीज शब्द - लोक संस्कृति, ब्रह्मपुत्र नदी, माँझुली, जनजातियाँ, दबूर पूजा, बोहाग बिहू, खानपान, वेशभूषा, देवेन्द्र सत्यार्थी

'लोक' शब्द का अर्थ है 'देखने वाला' अर्थात 'सर्वसाधारण जनता' एवं 'संस्कृति शब्द संस्कार से बना है जिसका अर्थ है परिष्कार करना'1 अर्थात सर्व साधारण जनता की जीवन जीने की वह विधि जिससे वह स्वयं को निरंतर परिष्कृत करते रहते है लोक संस्कृति है। इसके अंतर्गत शिष्ट एवं जन संस्कृति दोनों का ही सम्मिश्रण है, इसमें रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, खान-पान, वेशभूषा, ललित कलाएं एवं लोक-विश्वास सम्मिलित हैं।

माझुली विश्व का सबसे बड़ा नदी द्वीप है। 2 सन् 1950 से पहले जब 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास सत्यार्थी जी द्वारा लिखा जा रहा था। उस समय माझुली 1250 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में फैला हुआ था। जो निरंतर ब्रह्मपुत्र में समा रहा है एवं वर्तमान में केवल 450 वर्ग किलोमीटर ही बचा है, जो कि अनुमानतः अगले 30, 40 वर्षों में

गांधी को दक्षिण अफ्रीका में इस बंग भंग आंदोलन तथा वंदेमातरम् के उद्घोष की महाध्वनि शीघ्र ही सुनाई पड़ी और उन्होंने अपने अखबार 'इंडियन ओपिनियन' के 2 दिसंबर, 1905 को 'वंदेमातरम् : बंगाल का शौर्यमय गीत' लेख लिखा और हिंदी में संपूर्ण 'वंदेमातरम्' को भी उद्धृत किया और अपने लेख में लिखा," पश्चिम के प्रत्येक राष्ट्र का अपना राष्ट्रगीत है।

पूर्णतः खत्म हो सकता है। आज के समय में माझुली पर कुछ अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखी गयीं है, जो माझुली द्वीप की संस्कृति एवं वहाँ के जीवन की समस्याओं को दिखाती है। जिनमें 'माजुली' (लेखक -डॉ संजीब कुमार बोरककोती) और 'द माजुली आइलैंड' (लेखक-डी नाथ) प्रमुख हैं।

माझुली की संस्कृति इतनी रोचक एवं महत्वपूर्ण है कि सत्यार्थी जी अपने उपन्यास में कहते हैं- "हाँ एक बात अवश्य है कि पहले मैं केवल एक नदी की जीवनी लिखना चाहता था ; अब मेरी समझ में यह बात आ गयी कि नदी के किनारे बसे हुए लोगो का संघर्ष भी नदी की जीवनी से अलग नहीं। 3

माझुली में आज भी असमिया, मीरी, नेपाली एवं मुस्लिम जनजातियां निवास करती हैं। जिनका मुख्य व्यवसाय खेती करना एवं मछली पकड़ना है। उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' में सत्यार्थी जी ब्रह्मपुत्र का उद्गम स्थान तिब्बत बताते हैं। साथ ही यह भी कि इसे वहाँ 'शान पो' कहा जाता है अर्थात बड़ी नदी। 4

भारत की नदियों का वर्णन करते हुए व्यास जी ने उन्हें 'विश्वस्य मातरः' कहा है। सचमुच नदियां लोकमाता ही होती हैं लेकिन सब नदियों को हम माता नहीं कहते। विश्वामित्र ने तमसा नदी को अपनी बहन कहा है। ब्रह्मपुत्र ना बहन है ना माता। वह तो सृजन और संघार की लीला में मस्त एक देवता है। 5

"मानसरोवर से सागर तक ब्रह्मपुत्र की पूरी लम्बाई 1800 मील है। इसका जन्म स्थान तिब्बत में 31°, 31' उत्तर और 82° पूर्व है। यह स्थान मानसरोवर के उत्तर में है ; यहां से वह छोर दूर नहीं जहां सतलज और सिंध पहली धारा का रूप धारण करते हैं। यह तिब्बत में 'सान-पो' के रूप में चलता है। असम में प्रवेश करने से पहले 'डि-हांग' बनता है।"6

माझुली कला एवं संस्कृति की दृष्टि से अन्य सभी नदी द्वीपों में श्रेष्ठ है। माझुली में वैशाख माह में मनाए जाने वाले 'बोहाग बिहू' के त्योहार का उपन्यास में विस्तृत वर्णन है। 'बिहू' माझुली का ही नहीं अपितु पूरे आसाम का सबसे बड़ा त्यौहार है -

"वैशाख के लिए असमिया शब्द था बोहाग; वैशाख का पहला दिन 'मानु बिहू' कहलाता था- मानु अर्थात मनुष्य। उस दिन घर के प्राणी बिहू मनाने के लिए तैयार होते थे। चैत्र के आरंभ से ही घरों और खेतों में बिहू पक्षी का स्वर गूंजने लगता था। अंतिम तिथि से वैशाख की षष्ठी तक बोहाग बिहू का त्योहार मनाया जाता था। चैत्र का अंतिम दिन दिसांगमुख में ,'गोरु बिहू' के नाम से प्रसिद्ध था। क्योंकि इस दिन पशुओं को ब्रह्मपुत्र में मल-मल कर नहलाया जाता था। भोर से पहले ही उठकर घर की स्त्रियां हल्दी और दाल की पीठी रगड़ कर तैयार करती थी, फिर सरसों का तेल और पीठी मल-मल कर पशुओं को ब्रह्मपुत्र में स्नान कराने के लिए निकाला जाता था। जब पशुओं का स्नान समाप्त हो जाता तो उस पर बांस की पोरी में भरे हुए लौकी और बैंगन के छोटे-छोटे टुकड़े फेंक कर उनकी पूजा की जाती थी। और पुराने गीत के शब्दों में कहा जाता था। यह ले लौकी, यह ले बैंगन, प्रतिवर्ष फलो-फूलो। तेरी मां कद में छोटी है और पिता भी; भगवान करे तुम्हारा डीलडौल बड़ा निकले। गोहाली की सफाई की जाती थी। धूप जलाकर गोहाली को सुगंधित किया जाता था। पशुओं को नई-नई रस्सियों से बांधा जाता। त्यौहार के उपलक्ष में विशेष रूप से बनाई गई मिठाई का एक भाग पशुओं को भी मिलता था" 7

बोहाग बिहू में 'लाओ पानी' (चावल का नशीला पेय पदार्थ) और लोकगीतों का अत्यधिक महत्व है। युवक-युवतियां अलग-अलग समूह में बैठकर वाद्य यंत्रों के साथ लोकगीत गाते हैं एवं नृत्य करते हैं।

"बोहाग बिहू तो वस्तुतः नए धान का त्यौहार था प्रत्येक घर का भराल नए धान से भरपूर था। प्रत्येक प्राणी नूतन उल्लास का प्रतीक था।

युवकों ने एक गान आरंभ किया।

बिहू मारि थाकिवार मने ओई लगरी

बिहू मारि थाकिवार मन

बिहू मारि थाकोते ,पुलुवाई निनिवा

भरिबो लागिबो धन

(बिहू गाती चली जाऊं, यही जी चाहता है, प्रियतम बिहू गाते रहने को जी चाहता है। बिहू गाते-गाते मुझे भगा कर न ले जाना धन भरना पड़ेगा।)

बिहू के उल्लास में एक से बढ़कर एक गान गाए जा रहे थे।" 8

प्रतिवर्ष ब्रह्मपुत्र माझुली की कुछ जमीन लील लेता है इसी दुःख को माजुली में ईंधन लेने जाने वाले लोग एक लोकगीत के माध्यम से व्यक्त करते है जिसमें असम की सबसे छोटी एवं मान्य भेंट (पान के पत्ते पर सुपारी) भी न चुका पाने वाले वर्ग का वर्णन है यथा -

ब्रह्मपुत्र कानो ते ,बरहमथूरी जूपीय

आमी खरा लोरा जाइय

ऊटूवाई नीनीवा, ब्रह्मपुत्र देवता,

तामोल दी मानोता नाई।

(ब्रह्मपुत्र के किनारे है बरहमथूरी गाछ। जहां हम ईंधन लेने जाते हैं। इसे लील मत लेना ब्रह्मपुत्र देवता! हमारी इतनी भी क्षमता नहीं कि हरी सुपारी से ही तुम्हारा अर्चन कर सकें।)9

लोक विश्वास एवं परम्पराएँ किसी भी संस्कृति को समृद्ध करती है एवं एक लम्बे समय तक उसे बनाये रखती है। उपन्यास में सत्यार्थी जी ने माझुली में रह रही जनजातियों की अनेक परम्पराओं का उल्लेख किया है। मीरी जनजाति की परम्परा दृष्टव्य है - "मीरी लोगों की एक परंपरा अतुल को विशेष रूप से प्रिय थी। यह परंपरा फाख्ता के संबंध में थी जब वह फुर से उड़कर छत पर आ बैठती थी तो मीरी लोग सदा यह अनुमान लगाते कि उनके पुरखों की आत्माओं को कष्ट हो रहा है। फाख्ताओं को चावल खिलाया जाता था ताकि पुरखों का कष्ट दूर हो जाये।" 10

माझुली पर रहने वाली यह जनजाति इंद्र को खुश करने के लिए वर्ष में दो बार "दबूर पूजा" का आयोजन करती है जिसमें आज भी पशु बलि का प्रावधान है।11 पूजा के मध्य में गाँव आगमन पर वह

व्यक्ति 'येगुम' की सजा का पात्र होता है, उपन्यास में एक किशोरवय बालक मखना की मृत्यु इसी परिपेक्ष्य में हो जाती है क्योंकि असमिया जनजाति का वह बालक बिना अपने घर पर बताये उत्सुकतावश दबूर पूजा देखने मीरी गाँव में चला जाता है और सजा नियमानुसार उसे येगुम में सूअरों के बीच डाल दिया जाता है, यथा -

"मीरी बस्ती के एक दुर्गन्धपूर्ण कोने में फूल से भी कोमल मखना पड़ा था, जहाँ साधन मीरी उसके हाथपैर बांधकर उसे डाल गया था...बड़े सूअर,छोटे सूअर,सुअरियाँ और उनके बच्चे। यह सूअरी यों देख रही थी,जैसे कभी-कभी मखना की माँ देखा करती थी।...वह माँ को आवाज देना चाहता था।

पर यहाँ माँ कहाँ थी।

फिर एक बाँबी से काला नाग बाहर निकला। अन्धकार में काला नाग एक रेखा प्रतीत हो रहा था; मखना ने उस हिलती-डुलती रेखा को देखा। साँपों के सम्बन्ध में सुनी हुई अनेक कहानियाँ एक साथ उसके मस्तिष्क में घूम गयीं, जैसे दुनिया भर के सापों का विष इस काले नाग के विष के सामने हेच हो; जैसे साक्षात् मृत्यु ही उसकी तरफ बढ़ी आ रही हो; जैसे उसके जीवन की बाती अब कुछ ही क्षणों में बुझ जाएगी; फिर यह बाती कभी नहीं जलेगी, चाहे कोई इस दीपक में मनों तेल क्यूँ न डाल दे!" अंततः मखना की मृत्यु हो जाती है12

"पहली पूजा चैत्र में की जाती थी - वर्षा ऋतु से पहले; दूसरी पूजा आश्विन में की जाती थी, जब वर्षा ऋतु अपने उत्कर्ष पर होती थी।

आज मीरी बस्ती में दबूर पूजा का त्यौहार मनाया जा रहा था, पूजा के लिए मीरी भाषा का शब्द था "ऊई" इसलिए स्वयं मीरी लोग इस त्यौहार को "दबूर ऊई" कहते थे।

सवेरे-सवेरे दबूर पूजा आरम्भ होने से पहले बस्ती के प्रवेश द्वार पर कोई चिन्ह रख दिया जाता था, जिससे यह पता चल जाए की बस्ती के भीतर दबूर पूजा हो रही है और पूजा शेष होने तक कोई व्यक्ति बस्ती के भीतर प्रवेश करने का साहस न करे। बस्ती के बाहर लकड़ी की तख्ती लगाकर उस पर लिखवा दिया जाता था- "आज हमारे गाँव में दबूर पूजा हो रही है। इसलिए प्रातः काल से लेकर गोधूली तक कोई भी आदमी बस्ती के भीतर प्रवेश न कर। इस विज्ञप्ति की अवहेलना करते हुए कोई व्यक्ति बस्ती में घुसने का साहस करता, तो उसे एक ही दंड दिया जाता- उसके हाथ पैर बांधकर उसे 'येगुम' में डाल आते थे, 'येगुम' उस स्थान को कहते थे जहाँ झोपड़ी के मचान के नीचे सूअर बंधे रहते थे। पूजास्थल की परिक्रमा के पश्च्यात मुर्गे मुर्गियों और सुअरी की बलि दी जाती थी; पूजा करने वाले लोग मिलकर मांस पकाते और इंद्र देवता के नाम पर सह भोज का आनंद लेते। पूजा के पश्च्यात 'लाओ पानी' का नशा किया जाता।

गाँव की लड़कियां मिलकर नाचती थीं और अपने दबूर नृत्य में गाये जाने वाले गीतों में इंद्र देवता को संबोधित करते हुए कहती थी - "देवता की कृपा बनी रहे। धरती धानवती हो। स्त्रियाँ पुत्रवती हों। गाँव में सुख शान्ति रहे। धान धान से मिले आदमी आदमी से मिले। कोई किसी से शत्रुता न करे। कोई किसी से ईर्ष्या न करे। दबूर देवता का आशीर्वाद सबको एक समान प्राप्त हो।"13

“बोहाग बिहू की तरह ही असम में ‘काती बिहू’ और ‘माघ बिहू’ भी मनाया जाता है। काती बिहू में लोग घरों और खेतों में दीप जलाते हैं विशेष रूप से भराली (अनाज भरने की जगह) और गोहाली (गाये बैल बाँधने की जगह) में दिए जलाते हैं।

माघ बिहू प्रति वर्ष पूस की अंतिम तिथि को मनाया जाता है। जिसमें बांस के पाँच डंडे गाड़ कर लकड़ियाँ जलाई जाती हैं। माघ बिहू के उल्लास में लड़कियां रात भर आग तापती रहतीं और लड़कों के दंगल देखती रहती।”14

माझुली ही नहीं अपितु पूरे असम में ही श्वेत वस्त्र महत्व रखते हैं। विशेषकर कंधो पर डालने वाली सफेद चादर जिसकी किनारी लाल पट्टियों से सुसज्जित रहती है, प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान के लिए अनिवार्य मानी जाती है। ब्रम्हपुत्र उपन्यास में सत्यार्थी जी ने असमिया युवतियों की वेशभूषा का चित्रण किया है यथा -

”जून तारा ने श्वेत ‘मेखला’ पहन रखी थी। जैसे तहमद बाँधा जाता है। उससे थोडा सा ऊपर खींचकर युवतियां मेखला बांधती हैं। श्वेत मेखला के साथ श्वेत अंगिया ही पहनती थी जूनतारा। श्वेत अंगिया और मेखला से मेल खाती हुई श्वेत चादर कन्धों पर। जूनतारा का वेश सब सखियों में विशिष्ट था। शेष कन्याओं में किसी-किसी ने तो लाल, नीली और पीली मेखला पहन रखी थी। किसी किसी ने तो आज अंगिया पहनने की आवश्यकता अनुभव न की थी।”15

लोक संस्कृति में संस्कारों का विशेष महत्व है। हिन्दू धर्म में सोलह संस्कारों के अन्तर्गत विवाह संस्कार का विशेष स्थान है। असमिया जनजाति में विवाह के प्रति उच्च धारणा दृष्टव्य है -

“धर्मानंदी ने साफ साफ कहा ‘आरती तो मन ही मन देवकांत का वरण कर चुकी है’ बापू बोले- ‘फिर तुम चिंता छोड़ो समय आने पर देवकांत का विवाह आरती के साथ होगा। ’ मैंने पास से कहा-‘ देवकांत की भी इच्छा होगी तब ना?’ ‘अरे हाँ हाँ।’ बापू ने गंभीर मुद्रा बना कर कहा। दिसांगमुख में तो सदा से यही होता आया; वर और कन्या की परस्पर स्वीकृति के बिना कब कोई विवाह संपन्न हुआ?”16

वास्तु कला किसी भी संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। माझुली द्वीप में रह रही तीन प्रकार की जन जातिओं के घरों की बनावट पर भी सत्यार्थी जी ने प्रकाश डाला है -“घरों की बनावट तीन प्रकार की थी जिनमे असमिया घर का रूप ही सबसे अधिक सुन्दर था। चारों ओर बागीचा, बीच में तीन चार झोपड़ियां निवास के लिए; सामने वाले द्वार से भीतर जाने पर दायीं ओर पशुओं के लिए पृथक गोशाळा और बायीं ओर अनाज रखने के लिए पृथक ‘बखार’। खाते पीते असमिया के घर में अपना पोखर भी होता था जिससे घर की आवश्यकता के लिए मछलियां मिल जाती थीं; जब बत्तखें तैर रही होती, तब पोखर अति सुन्दर प्रतीत होता था। असमिया किसानों के अतिरिक्त नागरिया और मछुए भी अपनी शक्ति के अनुसार इसी प्रकार का घर बनाते थे। जिसमे छोटा मोटा बगीचा अवश्य रहता था।

मीरी नमूने के घर बनाने के लिए पहले छः छः फुट लकड़ी के खम्बे जमीन में गाड़ते थे। फिर इन खम्भों पर एक मचान बनाया जाता था। इस प्रकार नमूने के घर के लिए किसी प्रकार के बागीचे अथवा

पोखर की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। घर के भीतर किसी प्रकार की दीवार अथवा ओट खड़ी करना मीरी परंपरा के विरुद्ध था।

तीसरा नमूना नेपालियों के यहाँ मिलता था। झोपड़ी तो ऊंचे मचान पर बनायीं जाती थी, पर आवश्यकता अनुसार बीच में दीवारें बनाकर अलग अलग कमरों का रूप दे दिया जाता था। घर के आस पास पौधे भी लगा लिए जाते थे, और अधिक भूमि होने की अवस्था में छोटी सी पुखरी भी अवश्य बनायीं जाती थी।17

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि सत्यार्थी जी का ब्रह्मपुत्र उपन्यास आज 64 वर्षों बाद भी न केवल एक श्रेष्ठ उपन्यास का महत्व रखता है अपितु लोक संस्कृति के रूप में भी चिरकाल तक इसका अमूल्य योगदान रहेगा।

संदर्भ

1. लोकसंस्कृति की रुपरेखा,कृष्णदेव उपाध्याय,लोकभारती प्रकाशन,इलाहबाद, 2014 पृष्ठ 8,11
2. http://www.guinnessworldrecords.com/world-records/largest-river-island-
3. ब्रह्मपुत्र,देवेन्द्र सत्यार्थी,एशिया प्रकाशन,नयी दिल्ली,1956,पृष्ठ 206
4. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ14
5. लोक-युग का नदी-पुराण,काका कालेलकर,ब्रह्मपुत्र,देवेन्द्र सत्यार्थी,एशिया प्रकाशन,नयी दिल्ली,1956,पृष्ठ 7
6. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ13
7. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ 135,136
8. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ137,138
9. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ449
10. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ68
11. Dabur puja of missing communityby chandon kutum , http://youtu.be/utLfV6fCiKU
12. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 181,182
13. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ172,173,174
14. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ213
15. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ53
16. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ321
17. ब्रह्मपुत्र,पृष्ठ44,45

❒❒❒

1. संपर्क: 8851272739

मॉरिशस की भोजपुरी लोककथा-ओं में जीवन मूल्य

-डॉ. नूतन पाण्डेय

किसी देश का लोक साहित्य उस देश की संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधि होता है। अपनी प्राचीनता और लोक की आत्मा से अंतरंगता के कारण ही लोक साहित्य अपने समाज और संस्कृति की शाश्वत धरोहर माना जाता है। लोक साहित्य, समाज के उद्भव काल से लेकर वर्तमान तक की सभी स्थितियों, परिस्थितियों, मनोदशाओं, उसके सांस्कृतिक विकास को न केवल क्रमबद्ध रूप से प्रदर्शित करता है, बल्कि उसे लोगों के दिल में जीवित रखकर उसे चिरकालिक और सार्वभौम भी बनाता है। लोक साहित्य में लोक मानस निहित रहता है| जनजीवन की नैसर्गिक अनूभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम होना लोक साहित्य को कृत्रिमता ,विद्वत्ता और आडम्बर के स्थान पर उसे सहजता, स्वाभाविकता और आत्मीयता से मंडित करता है। लोक साहित्य की यही खूबी उसे लोक मानस के निकट से निकटतर ले जाती है। लोक साहित्य के मर्मज्ञ डॉ सत्येंद्र लोक साहित्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं : **लोक, मनुष्य-समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।(1)** शायद इसी कारण कुछ विद्वानों ने लोक साहित्य को अपौरुषेय की संज्ञा से भी अभिहित किया है। हिंदी साहित्य कोश में लोक साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि **लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने न गढ़ी हो पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है ,जिसमें लोकमानस का प्रतिबिम्ब रहता है।(2)**

सर्व मंगलकारी भावना से परिपूर्ण और लोक परंपरा का वाहक लोक साहित्य मौखिक रूप से अनेक कंठों से होता हुआ पीढ़ियों तक अपना अस्तित्व बनाए रखने की सामर्थ्य रखता है| यह अलग

राजा के द्वारा कैलाश को मारवाने के बाद कमलावती भी अपने पति के साथ ही सती हो जाती है और इस जन्म में भी दोनों का मिलन नहीं हो पाता। पांचवें जन्म में दोनों हंस हंसिनी के रूप में जन्म लेतें हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश हंसिनी के चरित्र पर शक करके हंस तालाब में डूबकर मर जाता है। हंस के जाने के ग़म में हंसिनी भी जान दे देती है।

बात है कि इसका कोई एक रचनाकार नहीं होता और मौखिक परंपरा से एक पीढी से दूसरी पीढी तक हस्तांतरित होने के कारण यह समय के प्रवाह में बहकर अपना स्वरूप परिवर्तित करता रहता है| इसके बावजूद लोकसाहित्य अपना मूलभूत उद्देश्य, लोकप्रियता और सर्वग्राह्यता कभी नहीं खोता| लोक साहित्य के विशेषज्ञ डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय लोक साहित्य की जन समाज से अभिन्नता स्वीकारते हुए लिखते हैं: **सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली,अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा-निराशा,हर्ष-विषाद ,जीवन –मरण ,लाभ –हानि ,सुख-दुःख की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है,उसे लोक साहित्य कहते हैं। (3)**

अपनी लोक समावेशी प्रकृति के कारण लोक साहित्य देश,काल और समाज की सीमा से परे होता है, इस कारण उसकी व्यापकता मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक और बाल से लेकर वृद्ध तक सर्वत्र विद्यमान है। लोक साहित्य के संबंध में यह भी विचारणीय है कि साहित्यिक समाज का एक वर्ग लोक साहित्य को शिष्ट साहित्य से परे रखकर देखता है| कुछ विद्वान् तो लोक साहित्य को ग्रामीण साहित्य की भी संज्ञा दे देते हैं| इस अवधारणा के पीछे स्वाभाविक रूप से इन विद्वानों के कई तर्क हैं, जैसे कि इनके रचयिताओं का अज्ञात और अप्रसिद्ध होना, लोक साहित्य का शास्त्रीय नियमों और बंधनों से मुक्त होना तथा लोक साहित्य का लिखित रूप उपलब्ध न होना आदि आदि। इसमें कोई दो राय नहीं कि भले ही लोक साहित्य में शिष्ट माने जाने वाले साहित्य की उपर्युक्त विशेषताएं समाहित न हों, लेकिन इस महत्वपूर्ण तथ्य से भी किसी की असहमति नहीं हो सकती कि लोक साहित्य द्वारा जन समाज की परंपरा गत वसीयत को न केवल सहेजकर रखा जाता है, बल्कि उसे पीढी दर पीढी हस्तांतरित भी किया जाता है। जीवन के अमूल्य सामाजिक-नैतिक मूल्यों को समाहित करने के कारण ही लोक साहित्य का महत्त्व चिर स्थाई है और उसे किसी भी अन्य साहित्य से कम करके नहीं आंका जा सकता।लोक साहित्य के विविध रूप हैं ,जिनमें लोकगीत ,लोकगाथा, लोकनाटक ,लोककथा,लोक कहावतें, चुटकुले और प्रकीर्ण साहित्य आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तुत आलेख में गिरमिटिया मजदूरों द्वारा अपने मातृदेश से लाई गई और उसके प्रभाव से निर्मित मॉरिशस की पूर्णतया मौलिक लोक कथाओं का मूल्यपरक अध्ययन और विश्लेषण किया गया है। मॉरिशस हिंद महासागर के दक्षिण पश्चिम में स्थित एक ख़ूबसूरत द्वीप है,जिसकी आधी से अधिक आबादी भारतीय मूल के लोगों की है ,जो लगभग दो शताब्दी पूर्व ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता द्वारा गिरमिटिया मजदूरों के रूप में गन्ने के बागानों में खेती करने ले जाए गए थे। इन मजदूरों ने संघर्षों के कठिन दौर में अपने साथ लाई मानस की चौपाइयों ,हनुमान चालीसा ,लोक कथाओं,लोक मान्यताओं,परंपराओं में निहित जीवन आदर्शों को अपना संबल बनाया। इन सबके माध्यम से उन्होंने न केवल आत्मबल अर्जित किया बल्कि अपने परिश्रम के बल पर इस द्वीप को भी आर्थिक रूप से समृद्ध किया| ये कथाएँ आज भी भोजपुरी समाज में प्रचलित हैं और इन परिवारों में चाव से सुनी- सुनाई जाती हैं। मॉरिशस ऐसा देश है जहाँ समय –समय पर विभिन्न सत्ताधारियों द्वारा विभिन्न देशों से लाये गए लोग सद्भावना पूर्वक निवास करते हैं| यद्यपि इन बहुभाषी समाजों के पास अपनी-अपनी लोककथाओं का विशाल और समृद्ध भण्डार है, जिनका वर्तमान

संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन अपेक्षित है ,लेकिन विभिन्न प्रकार की सीमाओं को देखते हुए प्रस्तुत आलेख को सिर्फ मॉरिशसीय भोजपुरी समाज में प्रचलित लोककथाओं के संदर्भ में सीमित रखा गया है।

मॉरिशस में लोककथाओं का जन्म किस तरह हुआ और किन परिस्थितियों में विकसित होकर इन कथाओं ने समाज के विभिन्न वर्गों तक अपनी पैठ बनाई ,यह सब समझने के लिए मॉरिशस के इतिहास की पृष्ठभूमि के बारे में संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है। यह सर्वविदित है कि मॉरिशस और भारत के संबंध सुदीर्घ ,ऐतिहासिक और भावनात्मक हैं। दोनों ही देश समान इतिहास और सांस्कृतिक परंपरा को साझा करते हैं। समान सांस्कृतिक विरासत,इतिहास और परंपरा के कारण मॉरिशस को **लघु भारत, हिन्द महासागर के पार एक और भारत** जैसी संज्ञाएं दी जाती हैं। आज छोटा सा लघु द्वीप मॉरिशस निस्संदेह विश्व मानचित्र पर राजनैतिक,आर्थिक और सामरिक दृष्टि से अपनी महत्वपूर्ण पहचान रखता है ,लेकिन मॉरिशस के इस भव्य वर्तमान के पीछे छिपी है, मानव जिजीविषा की वह अनूठी लोककथा ,जो मानव जाति के समक्ष अपनी अस्मिता और आत्म सम्मान को जीवित रखने की एक अद्भुत गाथा कही जा सकती है। अतीत के पृष्ठों में देखने पर ज्ञात होता है कि सन 1830 से 1910 तक मॉरिशस में अनुबंध प्रथा के अंतर्गत भारत के उत्तर प्रदेश और बिहार के विभिन्न प्रांतों से लगभग 4,85,000 मजदूर गन्ना बागानों में मजदूरी करने के लिए लाए गए। मजदूरों का विशाल मात्रा में आप्रवासन एक वैश्विक घटना थी ,जिसमें उपनिवेशवादी सत्ता ने मॉरिशस द्वीप को **ग्रेट एक्सपीरियंस** के तौर पर चुना और इसकी सफलता के पश्चात त्रिनिदाद ,गयाना, फिजी और सूरीनाम आदि देशों में विभिन्न भारतीयों को मजदूर बनाकर ले जाया गया था। चूँकि ये मजदूर अनुबंध या शर्त प्रथा के अंतर्गत ले जाए गए थे और अधिकांश मजदूर अशिक्षित थे, इसलिए इस अग्रीमेंट सिस्टम ने उच्चारणगत प्रक्रिया के फलस्वरूप बिगड़ते –बिगड़ते गिरमिटिया प्रथा का और मजदूरों ने गिरमिटिया मजदूरों का रूप ले लिया। आगे चलकर यही गिरमिटिया शब्द एक संस्कृति, एक विरासत और विशेष रूप से एक समुदाय विशेष के अस्तित्व की पहचान का द्योतक शब्द बन गया। समय की धारा के साथ बहते हुए गिरमिटिया शब्द ने अन्याय के खिलाफ संघर्ष द्वारा अदम्य जिजीविषा की वो अनूठी महागाथा रची जो इतिहास में स्वर्णाक्षरों में दर्ज हो गई। दासप्रथा के उन्मूलन के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आई यह अनुबंध व्यवस्था संविदात्मक होने के साथ – साथ वैधानिक भी थी , जिसके अंतर्गत गिरमिटिया मजदूरों को पांच रुपये महीने मिलते थे, रहने के लिए छोटी-छोटी झोपड़ियां दी जाती थीं जिसमें एक साथ तीन/चार मजदूरों को रखा जाता था| झोपड़ियों में हवा पानी की सुविधा नहीं होती थी, अस्वच्छता के कारण ये झोपड़ियां बीमारी का घर कही जा सकती थीं। इन मजदूरों को दिन में चौदह-पंद्रह घंटे कडा परिश्रम करना पड़ता था। थककर चूर हो जाने और काम करने में असमर्थता व्यक्त करने पर इन्हें कोड़ों की मार सहनी पड़ती थी। जब मजदूर भाई थकहार कर अपनी झोपड़ियों में आते थे तो शाम को पेड़ के तले चटाई पर बैठकर, मिट्टी के दीए जलाकर साथ बैठते और अपने दुख दर्द एक दूसरे से बांटते थे। भौतिक रूप से तो ये मजदूर अपने देश से खाली हाथ आए थे लेकिन इनकी पोटलियों में बंधी थी इनकी संस्कृति, इनकी भाषा, रीति- रिवाज, परंपराएं,रामायण, हनुमान चालीसा, सत्यनारायण की कथा और विभिन्न धार्मिक और लोक कथाएँ आदि| सभी मजदूर अपने धर्म और संस्कृति की बातें आपस में एक दूसरे को सुनाते थे

और उनसे प्रेरणा प्राप्त करते थे। रामायण और हनुमान चालीसा आदि धार्मिक ग्रन्थ इनको संघर्षों से लड़ने की शक्ति और आत्मबल देते थे ,जिससे स्फूर्ति प्राप्त कर ये अगले दिन के लिए स्वयं को तैयार करते थे| बहुत से लोगों को ये धार्मिक कथाएँ और रामायण की चौपाइयां मुंह जबानी भी याद होती थीं ,जिन्हें गा गाकर ये अपने बच्चों को सुनाते थे। उन मजदूर भाइयों के हृदय में अनगिन लोककथाएं गहरे से अंकित थीं जो उन्हें अपने दादा –दादी से मिली थीं और विपरीत परिस्थितियों में जीवन को संबल देने की अपूर्व सामर्थ्य लिए थीं और अपनी इसी अलौकिक विरासत से संबल लेकर इन मजदूरों ने अपने रक्त और स्वेद से संघर्ष पर विजय प्राप्ति की जो अमिट गाथा लिखी वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। माना जा सकता है कि मॉरिशस के इतिहास जितना ही पुराना मॉरिशस की लोक कथाओं का इतिहास भी है क्योंकि भारतवंशियों के इन अनगिन संघर्षों के साथ ही भारत से अपने साथ लाई लोक कथाओं को भी विस्तार मिलता गया और धीरे-धीरे विकसित होकर वे लोकमानस में सुदृढ़ रूप से समाहित होती चली गईं|

जैसा कि ऊपर कहा गया कि मॉरिशस एक बहुभाषिक, बहुजातीय और बहु सांस्कृतिक देश है, जिसके इस स्वरूप में आने की प्रक्रिया दीर्घकालिक और सतत परिवर्तित कही जा सकती है। मॉरिशस द्वीप पर सर्वप्रथम डच और फिर फ्रेंच उपनिवेश की सत्ता रही, जिनके शासन के दौरान रीयूनियन, मेडागास्कर तथा पूर्वी तथा पश्चिमी अफ्रीकी देशों से दास लाये गए| फ्रेंच मालिकों और अफ्रीकी दासों में परस्पर संपर्क स्थापित करने हेतु द्वीप पर एक विशेष भाषा का जन्म हुआ जिसे आगे चलकर क्रियोल का नाम दिया गया, भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से परस्पर विनिमय की प्रबल आवश्यकता के कारण उत्पन्न इस नवीन भाषिक रूप को फ्रेंच भाषा का अपभ्रंश और सरलीकृत रूप कहा जा सकता है| फ्रेंच साम्राज्य के पश्चात द्वीप पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हुआ, जिनके समय में भारत के विभिन्न प्रांतों से गन्ने के खेतों में मजदूरी करने हेतु विशाल मात्रा में भारतवंशियों का अप्रवासन हुआ। इसी के साथ चीनी लोगों का भी रिटेल दुकानों पर काम करने हेतु द्वीप पर आगमन प्रारंभ हुआ। एक बड़ी मात्रा में इस द्वीप पर आए भारतवंशी यूँ तो भारत के विभिन्न प्रांतों से लाए गए थे लेकिन इसमें सर्वाधिक प्रतिशत पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से आए मजदूरों का था। इनकी भाषा भोजपुरी होने के कारण धीरे –धीरे द्वीप पर भोजपुरी भाषा का वर्चस्व स्थापित हुआ और आज स्थिति यह है कि क्रियोल और चीनी भाषा- भाषी भी काम चलाऊ भोजपुरी बोल सकते हैं।

नृजातीय दृष्टि से अध्ययन करने पर देखें तो मॉरिशस की संस्कृति अत्यंत रोचक है। लगभग चार शताब्दियों के अंतराल में यहाँ पर पुर्तगाली,डच ,फ्रेंच और अंग्रेजों का शासन रहा। डचों द्वारा मॉरिशस की संस्कृति को दिया योगदान भले ही नगण्य कहा जा सकता है,लेकिन फ्रेंच उपनिवेश काल में फ्रेंच और दक्षिण अफ्रीकी लोगों के आगमन और परस्पर संपर्क से यहाँ की संस्कृति को एक नया स्वरूप और आयाम मिला, जिसका प्रभाव इस द्वीप पर आज तक विद्यमान है| इसी प्रकार अंग्रेजी शासन में भारतीय और चीनी आप्रवासियों के आगमन ने इस द्वीप की संस्कृति को और भी समुन्नत किया है। इस प्रकार यह निस्संदिग्ध है कि यूरोप ,अफ्रीका और एशिया इन तीन महाद्वीपों की वैविध्यपूर्ण संस्कृति के विविध तत्वों ,परंपराओं और लोकदाय के समावेशी रूप ने मॉरिशस की सांस्कृतिक धरोहर को सुसमृद्ध किया है। मॉरिशस के लोग अपने जीवन में भारतीय, यूरोपियन और अफ्रीकन संस्कृतियों को अपने जीवन में जीवंत रखकर उनसे

प्रेरणा पाते हैं। उनके साथ उनके दैनिक जीवन में एक ओर उनके सहायक हैं सर्वशक्तिमान शिव-पार्वती ,श्री राम-सीता, गौतम बुद्ध , भगवान श्रीकृष्ण, ईसा मसीह और मोहम्मद साहब तो दूसरी ओर उनके ह्रदय सांता क्लोज़, रोबिन हुड, परमवीर हनुमान आदि की वीरता के किस्से पढकर रोमांचित होते हैं। भारत से आए लोगों के ह्रदय में विष्णु शर्मा और सोमदेव की प्रेरक और रोचक कहानियां बसी हुई हैं तो यूरोपियन और अफ्रीकन मूल के लोगों के साथ-साथ भारतवंशी भी ईसप ,जैकब ,जॉन ग्रे, लुइस कैरोल, ला फोनतें ,चार्ल्स पैरा, एंडरसन ,ग्रीम ब्रदर्स जैसे महान कथाकारों की लोक कथाओं को रुचि से पढ़ते हैं। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि लोक विरासत की दृष्टि से भोजपुरी भाषा मॉरिशस की सर्वाधिक संपन्न भाषा कही जा सकती है| इस भाषा में लोकगीतों,लोक कथाओं ,लोकनाटकों ,लोक कहावतों और लोक गाथाओं आदि की समृद्ध और विस्तृत परंपरा देखी जा सकती है। सूक्ष्मता से देखें तो इसके दो बड़े कारण सामने आते हैं| एक महत्वपूर्ण कारण तो भारतवंशियों द्वारा अन्य जातियों की तुलना में अपनी संस्कृति और लोक विरासत को जीवित रखने के लिए किये गए अथक संघर्ष हैं और दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह, कि भारतवंशियों का संबंध ऐसे देश से है जिसे कथाप्रिय देश कहा जाता है। **"भारत वर्ष लोककथाओं की उत्स भूमि है। यहाँ की प्राचीन कथाओं ने संसार के कथा साहित्य को प्रभावित किया है।"(4)** भारतवंशी उस देश की समृद्ध परंपरा को अपने साथ लाते हैं जहाँ वैदिक कथाओं, पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा सरित्सागर की कहानियों के माध्यम से बच्चों को बाल्यावस्था से ही संस्कारित बनने की शिक्षा दी जाती है। भारत की कई लोककथाओं का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है, यहाँ तक कि ईसप की कहानियों पर भी भारतीय लोककथाओं का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। (5,6)भारत की इस विशेषता को पाश्चात्य विद्वान् भी एक मत से स्वीकार करते हैं। यह बात सिलिवएन लेवी के इस कथन से स्वतः सिद्ध हो जाती है, जहाँ वे कहते हैं कि : **भारत की कथाओं ने दुनिया को जीता है। पंचतंत्र और हितोपदेश के बिना लाफोंतेन (१६२४ -१६९५) और गुणाढ्य की वृहत्कथा के बिना हज़ार और एक रातें संसार को न मिली होतीं और पाश्चात्य कथाकारों का जन्म ही रुक गया होता। (7)**

चूँकि इस शोध आलेख का मूल विषय लोककथाओं से सम्बंधित है इसलिए लोक कथाओं पर केंद्रित करके देखने पर ज्ञात होता है कि लोक-कथा (folklore) लोक साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण विधा है जो परंपरा से प्राप्त होने के साथ ही अत्यंत रोचक और मूल्यपरक कही जा सकती है| लोककथाएं मानव समाज की साझी वैचारिक अभिव्यक्तियाँ होती हैं, जिसकी शुरुआत कहाँ से हुई, यह कहना मुश्किल है। कहा जाता है कि **"यह एक सबसे प्राचीन और घुमंतू विधा है लेकिन इसके यात्रा –पथ को निश्चित कर पाना बहुत मुश्किल है। यह वेदों की तरह ही एक श्रुति विधा है।इसे लोक जीवन की स्मृति भी कह सकते हैं।" (8)** लोककथाएँ किसी समाज की संस्कृति की वाचिक संवाहक होती हैं जिसे एक पीढी के सदस्य अगली पीढी को अपने अनुभवों में पिरोकर देते हैं और नई पीढी उसमें अपनी कल्पनाशीलता और सृजनशीलता के माध्यम से कथात्मक रूप देकर उसे नए रूप, नए आवरण में प्रस्तुत करती है और इस प्रकार ये परंपरा सतत चलती रहती है।

लोककथामर्मज्ञ लोक कथाओं का उत्स ऋग्वेद के संवाद सूक्त और ब्राह्मण उपनिषद में पाते हैं।

प्राचीन काल में नारद जी ने रामायण की कथा वाल्मीकि को सुनाई थी, इसी प्रकार महाभारत में जन्मेजय के सर्प यज्ञ में सूतों द्वारा अनेक कथाएं सुनाई गई हैं जो एक प्रकार से लोककथाका ही रूप कही जा सकती हैं| इसी प्रकार मध्ययुगीन साहित्य में शुक द्वारा सिंहासन-बत्तीसी की कहानियाँ सुनाने का प्रसंग भी लोक कथाओं से मिलता जुलता है। लोककथाएं एक मुख से दूसरे मुख तक या फिर कहें एक कान से गुजरकर दूसरे कान तक पहुँचती है,इस कारण ये सतमुखी भी कही जाती हैं। **ये कथाएँ सतमुखी होती हैं ,याने इनके एक दो नहीं,सात-सात संस्करण होते हैं। सतमुखी शब्द में ही मौलिकता है। भला सोचिए तो इस सशक्त तत्व के कारण कोई भी कथा,किसी भी कुशल कथाक्कड़ के द्वारा कोई भी रूप ले सकती है। इसे स्वाभाविक ही माना जाएगा।(9)**

एक स्थान से दूसरे स्थान तक निरंतर घूमते रहने की प्रक्रिया में लोककथाएं स्थान और समय के प्रभाव से अपना यत्किंचित रूप बदलती रहती है और इस कारण हमेशा नई सी लगती हैं ,हमेशा रोचक बनी रहती हैं। लोककथा में वक्ता या कथक्कड़ का चातुर्यपूर्ण ढंग से अपनी बात रखना और श्रोता का पूर्ण सक्रिय होकर कथा सुनना प्रथम और अनिवार्य शर्त होती है| इसीलिए लोककथाके कहन-सुनन की सफलता हुंकारों की सतत उपस्थिति पर निर्भर करती है जो वक्ता और श्रोता दोनों को आनंद और औत्सुक्य की असीम अनुभूति कराने में सक्षम होती है|

लोक कथाओं का अस्तित्व प्राचीन काल से संपूर्ण विश्व में किसी न किसी रूप में विद्यमान है| लोककथाओं का एक सर्वसामान्य तत्व उनमें निहित लोकमंगल की भावना है, जिस कारण अधिकतर लोक कथाओं का अंत सुखमय होता है और वे **अंत भला सो सब भला** पर जाकर समाप्त होती हैं। लोककथाओं के संदर्भ में एक अद्भुत बात यह देखी जा सकती है कि प्रत्येक लोककथा में कुछ ऐसे तत्व होते हैं जो विश्व की हर लोककथामें समान रूप से देखे जा सकते हैं। **रूसी लोककथाओं के विद्वान व्लादिमीर प्रॉप ने रूसी भाषा की सौ लोककथाओं का गहन अध्ययन करने के पश्चात् अपनी विश्व विख्यात पुस्तक Morphology of the folktale (1928) में कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रतिपादित किए हैं जो कमोवेश विश्व की सभी लोककथाओं के संदर्भ में देखे जा सकते हैं।** प्रॉप ने लोककथाओं की विषयवस्तु और चरित्रों के परस्पर संबंध को रेखांकित करते हुए इस तथ्य पर बल दिया कि अधिकाँश लोककथाओं की विषयवस्तु उसके पात्रों द्वारा संचालित होती हैं और मुख्य पात्रों द्वारा लिए गए निर्णय और कार्य कलाप ही लोककथा का मूल आधार होते हैं। प्रॉप ने इन लोककथाओं के संरचनात्मक विश्लेषण के पश्चात् लोककथाओं में घटने वाली विविध घटनाओं और प्रसंगों को कालक्रमानुसार एक रेखीय अनुक्रम में रखा है और उन्हें इकतीस सोपानों में विभाजित किया है जिनमें से कुछ सेलेक्टिव घटनाओं का चयन करके विश्व की किसी भी लोककथा को उस साँचें में रखकर विश्लेषित किया जा सकता है। अपने इस विश्लेषण के आधार पर उन्होंने लोककथा के पात्रों को सर्वमान्य रूप से नायक,प्रतिनायक ,सहनायक,दाता ,मिथ्या नायक ,राजकुमारी और राजकुमारी की पिता आदि आठ श्रेणियों में रखा है। प्रॉप के अध्ययन से यह सिद्ध हो जाता है कि विश्व की विभिन्न भाषाओं और समुदायों में प्रचलित लोककथाएं कहीं न कहीं एक दूसरे से जुडी होती हैं। **(10) प्रॉप की इस थ्योरी से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि**

विश्व भर के मनुष्यों के स्वभाव में काफी हद तक समानताएं होती हैं।

प्रॉप के सिद्धांत के आधार पर मॉरिशस की लोककथाओं का अध्ययन करने पर कहा जा सकता है कि ये लोककथाएं भी इस सिद्धांत का अपवाद नहीं हैं| इन लोककथाओं का भारतीय जनजीवन से प्रभावित होना और उनसे समानता रखना परस्पर साहचर्य के इस सिद्धांत को और भी पुष्ट करता है| विविध कारणों और परिस्थितियोंवश मॉरिशस का लोक साहित्य एक लंबे समय तक अप्रकाशित ही रहा। इसे सर्वप्रथम प्रकाशित करने का श्रेय फ्रेंच भाषाविद चार्ल्स बेसाक को जाता है,जो रॉयल कॉलेज में फ्रेंच भाषा के प्रोफ़ेसर थे| चार्ल्स बेसाक ने सन 1888 में **मॉरिशस का लोक साहित्य(Le Folk lore de Le'Ile,1888)** पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें मॉरिशसीय समुदाय में प्रचलित विभिन्न भाषाओँ की डेढ़ सौ लोकोक्तियाँ, तीन दर्जन लोकगीत और कुछ प्रकीर्ण साहित्य के साथ अडतालीस लोककथाएं संकलित हैं। इस पुस्तक में भोजपुरी भाषा की एकमात्र लोककथा **सबूर की कथा** के फ्रेंच अनुवाद को स्थान दिया गया है, जो भोजपुरी भाषा भाषियों के लिए निश्चित ही निराशाजनक कहा जा सकता है। बाद में इस कथा का भावानुवाद पंडित वासुदेव विष्णुदयाल द्वारा किया गया था। इस महत्वपूर्ण पुस्तक के अतिरिक्त मॉरिशस के राष्ट्रकवि डॉ. ब्रजेंद्र भगत "मधुकर' ने सन 1969 में प्रथम भोजपुरी पुस्तक "मधुकलश" में 89 भोजपुरी ग्राम गीतों का संकलन किया था,जिसे रामधारी सिंह दिनकर ने लोक संस्कृति और हिंदुओं और भोजपुर के निवासियों के बीच संपर्क स्थापित करने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण बताया था।(11) सन 1989 में दिमलाला मोहित ने **मॉरिशस की भोजपुरी में प्रचलित लोकोक्तियाँ,मुहावरे और पहेलियाँ** नामक पुस्तक लिखी,जिसमें भोजपुरी प्रकीर्ण साहित्य,जैसे लोकोक्तियाँ,कहावत,मुहावरे आदि संकलित हैं। इसके अतिरिक्त सुचिता रामदीन द्वारा भी भोजपुरी में प्रचलित लोकगीतों को **संस्कार मंजरी** नामक पुस्तक में संकलन किया है| लोक साहित्य की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कार्य डॉ. उदयनारायण गंगू का है जिन्होंने अपने शोध कार्य **मॉरिशस में भोजपुरी लोकसाहित्य का भारतीय संस्कृति के संदर्भ में अनुशीलन** में मॉरिशस के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्वों को देखने का प्रयास किया है। भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन की अध्यक्ष डॉ. सरिता बुद्धू और रुद्रदत्त पोखन ने भी भोजपुरी लोकगीतों पर उल्लेखनीय कार्य किया है। अभी हाल ही में महात्मा गांधी संस्थान के भोजपुरी विभाग द्वारा प्रो. हेमराज सुंदर और डॉ.गिरजानंद सिंह बिसेसर (अरविंद) के संपादकत्व में **मॉरिशस के भोजपुरी साहित्य** नामक पुस्तक प्रकाशित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया है,जिसमें भोजपुरी में लिखित साहित्य के अतिरिक्त चौदह भोजपुरी लोककथाओं को भी सम्मिलित किया गया है। संस्थान द्वारा भोजपुरी लोककथाओं का विभिन्न भाषाओँ में अनुवाद कार्य भी किया जा रहा है।

मॉरिशस की लोक कथाओं पर शोधपरक और वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए प्रहलाद रामशरण का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रहलाद रामशरण की मॉरिशस की लोककथाएं (1974) ,बौने का वरदान (1987), मॉरिशस की लोककथाएँ भाग-1,2,(१९८८), मॉरिशस की शकुन्तला (1989),एशिया की श्रेष्ठ लोक कथाएँ (1990) आदि महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं , जिसमें रामशरण जी ने न केवल लोक कथाओं का परिश्रमसाध्य संकलन किया है, बल्कि उनको लोककथाके मानदंडों

पर परखा भी है। इसके अलावा रामशरण जी की **सात भाइन के बहिन, चौकीदार, बुधिया की जीत ,खरगोश और घोंघा, कछुए की चालाकी ,अमर बेलि की चोरी ,गिरगिट छिपकली की दुश्मनी** आदि लोककथाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। मॉरिशस में रामशरण जी के अलावा वासुदेव विष्णुदयाल, केशव दत्त चिंतामणि , पूजानंद नेमा और सूर्यदेव सिबोरत आदि ने भी लोक कथाओं के क्षेत्र में कार्य किया है।

तात्विक दृष्टि से मॉरिशस की भोजपुरी लोक कथाओं का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि अधिकाँश लोक कथाओं का मूल उत्स और प्रेरणा भारत की लोककथाएं हैं, लेकिन मॉरिशस की लोककथाओं का अपना स्वतंत्र संसार भी है। मॉरिशस की लोककथाएं यहाँ की स्थितियों ,परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुई हैं जो यहाँ के स्थानीय रीति-रिवाज, परंपराओं, मान्यताओं धार्मिक सांस्कृतिक मूल्यों, लोक मान्यताओं, हर्ष-विषाद को अभिव्यक्त करती हैं।

समाज में नैतिकता और आदर्श स्थापित करने और उसे स्थायित्व प्रदान करने में जीवन मूल्यों की प्रभावी भूमिका होती है। मूल्य मानव निर्मित वे आचरण हैं जो मानव हित संधान करते हैं और जिन्हें अपनाकर किसी समाज ,जाति और मानव समुदाय को सुंदर बनाया जा सकता है। समय के साथ परिवर्तित होते रहने के बावजूद मूल्यों में समाविष्ट लोकमंगल की भावना का कभी ह्रास नहीं होता। राधाकमल मुखर्जी (Radhakamal Mukerjee) के अनुसार- **मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वे इच्छाएँ तथा लक्ष्य (Desires and goals) हैं जिनका आन्तरीकरण (Internalization) समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो व्यक्तिपरक अधिमान्यताएँ (Subjective preferences), मानदण्ड (Standards) तथा अभिलाशाएँ बन जाती है।** इसी कारण समाज के इन जीवन मूल्यों को लोककथाओं का प्राण कहा जाता है| ये जीवन मूल्य सामाजिक, सांस्कृतिक,नैतिक और धार्मिक जीवन को अनुशासित और अनुप्रेरित करते हैं। मूल्य मानव जीवन की उन्नति और प्रगति के लिए अनिवार्य आवश्यकता हैं ,जो हमारे जीवन के हर क्षेत्र में विद्यमान हैं और हमारे मार्गदर्शक का कार्य करते हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार मृदुला गर्ग इस बात को स्वीकार करते हुए कहती हैं कि **चाहे हम सभा गोष्ठी में भाग ले रहे हों,चाहे साधारण बातचीत कर रहे हों,मूल्य कहीं भी हमारा पीछा नहीं छोड़ते।(12)** मूल्य किसी देश और समाज की सभ्यता और संस्कृति के परिचायक होते हैं ,क्योंकि ये संबद्ध देश की भूमि से अंकुरित होते हैं,फलते फूलते हैं और उस देश के समाज को भी परिष्कृत करके उसे पल्लवित ,पुष्पित करते हैं। हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ.रामविलास शर्मा का कथन इस संबंध में दृष्टव्य है कि **किसी भी मानव मूल्य के पीछे सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की एक लम्बी परंपरा होती है।(13)**

लोक कथाओं में मानव जीवन को स्वस्थ बनाने वाले मूल्यों का समावेश होता है और इनमें उन सभी तत्वों का समाहार होता है जो इस सृष्टि के संचालक और नियंता है और मानव-जीवन की उपस्थिति के प्रबल कारक हैं। मॉरिशस की लोककथाएं भी विविध जीवन मूल्यों से अनुप्राणित हैं। यहाँ की हर लोककथा में जीवन का कोई न कोई संदेश निहित है, जिससे प्रेरणा लेकर समाज प्रगति के पथ पर अग्रसरित हो सकता है। मॉरिशस की अधिकाँश लोककथाओं में शाश्वत और सार्वभौमिक मूल्य,जैसे प्रेम,अहिंसा,दया , करुणा,

परोपकार आदि की भावना निहित रहती है जो समस्त मानव जाति का हित संधान करती हैं। ये मूल्य हर युग और हर समय में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते हैं, जिनकी रक्षा करके प्रत्येक जाति, धर्म और सम्प्रदाय स्वयं को सुंदर और कल्याणकारी बना सकता है। मॉरिशस की लोक कथाओं का मूल उद्देश्य लोकमंगल हेतु समाज का पथ प्रदर्शन करना है,ये कथाएं अपनी विषयवस्तु और विभिन्न पात्रों के माध्यम से समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत करती हैं। सत्य,अहिंसा, नैतिकता, ईमानदारी आदि मानवीय गुणों की विजय स्थापित करना इन लोककथाओं का चरम है। इन कहानियों के नायक का राजा या राजकुमार होना आवश्यक नहीं, वह साधारण इंसान, लकडहारा, चरवाहा ,पशु –पक्षी,परी आदि में से कुछ भी हो सकता है। लोक कथाओं के ये सदपात्र उपेक्षित और जरूरतमंद व्यक्तियों की मदद करते दिखाई देते हैं और इस नेक कार्य में उनकी सहायता प्रकृति भी करती है। संक्षेप में कहें तो ये लोककथाएं मात्र मनोरंजन का माध्यम नहीं हैं ,बल्कि ये निहित संदेश के माध्यम से मनुष्य को पारस्परिक सद्भाव और आत्म सम्मान के साथ, सद्कर्म करते हुए लोकचेतना का आग्रह करती हैं और उत्कृष्ट तरीके से जीना सिखाती हैं| विषयवस्तु की दृष्टि से मॉरिशस की भोजपुरी लोककथाओं को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

1. भौगोलिक लोककथा
2. धार्मिक एवं पौराणिक लोककथा
3. सामाजिक कथा
4. उपदेशात्मक और नैतिक लोककथा
5. प्रेम कथा
6. पशु-पक्षियों और परियों की कथा

इन कथाओं की विषयवस्तु में निहित जीवन मूल्यों के आधार पर मॉरिशस की लोक कथाओं को निम्न प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है :

सबसे पहले मॉरिशस की उन लोक कथाओं की बात करते हैं जो इस द्वीप की पूर्णतया मौलिक कथाएं हैं और किसी अन्य देश के प्रभाव से सर्वथा मुक्त हैं| ये कथाएं मुख्यतया मॉरिशस की भौगोलिक संरचना, जैसे पहाड़, पर्वत, नदी, क्रेटर, सप्तरंगी भूमि आदि भौगोलिक स्थलों पर आधारित हैं। मॉरिशस को प्रकृति का अनुपम वरदान प्राप्त है। यहाँ की भौगोलिक विशेषताएं अपने आप में अद्भुत हैं जो न केवल अपने सौंदर्य के कारण लोगों को आकर्षित करती हैं ,बल्कि अपनी उत्पत्ति के प्रसंग से लोगों को चमत्कृत भी करती हैं। इनकी उत्पत्ति के प्रति यहाँ के निवासियों में समय -समय पर उपजे इसी रहस्य ने विभिन्न रोचक और अनूठी लोककथाओं को जन्म दिया होगा। यहाँ के स्थानीय लोगों ने इन जगहों के बारे में अपनी कल्पनाशक्ति से अनेक कहानियाँ गढ़ी होंगीं जो आगे चलकर यहाँ के समाज में एक मुख से दूसरे मुख तक, एक पीढी से दूसरी पीढी तक हस्तांतरित होती चली गई होंगीं और इस तरह इन कल्पना मिश्रित कथक्कड़ी ने ख़ूबसूरत लोककथाओं का स्वरूप ग्रहण कर लिया होगा। इन लोककथाओं की खास विशेषता यह है कि इन कथाओं में स्थान –विशेष की उत्पत्ति के विषय में श्रोताओं की रोचकता और जिज्ञासा प्रारंभ से अंत

तक बनी रहती है| प्रत्येक कथा अपने साथ कोई न कोई विशिष्ट उद्देश्य लेकर चलती है जो जीवन मूल्यों के प्रति समाज को सजग करती है। इस प्रकार की कथाओं में **मारीच का शव, शामरैल की रंगभूमि, मृग कुंड, परी-तालाब, मुडिया पहाड़, सिंह और डोडो, गूलर के फूल** आदि प्रमुख हैं। मॉरिशस के प्रसिद्ध इतिहासकार और लोककथामर्मग्य श्री प्रहलाद रामशरण इस संबंध में लिखते हैं : **मॉरिशस कैसे बना ? पहाड़ किस प्रकार खड़े हो गए? यहाँ की मिटटी सतरंगी कैसे हो गई आदि अनेक ऐसी कहानियाँ हैं जो यहाँ के वासियों की कल्पना शक्ति को प्रदर्शित करती हैं। इन कथाओं में यहाँ का लोक साहित्य झलकता है।(14)**

मॉरिशस की भौगोलिक लोककथाओं में सबसे पहले बात करते हैं, **मारीच का शव** नामक लोककथाकी जो मॉरिशस की उत्पत्ति का इतिहास बताती है। हम सब जानते हैं कि मॉरिशस को **मारीच देश** और **रामायण का देश** भी कहा जाता है। इस कथा में रामायण के उस पौराणिक प्रसंग का वर्णन है,जब प्रभु श्रीराम के हाथों मारीच की मृत्यु होती है| मरते समय मारीच भगवान् राम से वरदान माँगता है कि मृत्यु के पश्चात् भी वह राम नाम की महिमा सुनता रहे। जैसे ही मारीच के शव को भगवान् अपने हाथों से स्पर्श करते हैं उसी समय उसका पार्थिव शरीर मोतियों में बदल जाता है। प्रभु राम उन मोतियों को दक्षिण दिशा में फेंक देते हैं और ये मोती मॉरिशस,रियूनियन आदि छोटे छोटे टापुओं में बदल जाते हैं। द्वीप पर क्रमशः डच, फ्रांसीसी, अंग्रेज आते हैं ,जो विविध कारणोंवश वहां स्थाई निवास नहीं बना पाए| पर अंग्रेजों द्वारा खेती बागानों में काम करने के लिए भारत के पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के अनेक जिलों से गिरमिटिया मजदूरों के रूप में लाये गए लगभग पांच लाख भारतीय लोगों का इस द्वीप में आगमन महत्वपूर्ण घटना सिद्ध होती है। इन मजदूरों द्वारा अपने साथ लाये रामायण और हनुमान चालीसा के द्वीप में गुंजायमान होने के साथ ही मारीच प्रसन्न हुआ और उसको दिया गया प्रभु राम का वरदान भी पूर्ण हुआ। मेरा ऐसा विचार है कि यह भगवान् राम के गुणगान और उनके नाम का प्रताप ही है कि आज मॉरिशस राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से विश्व मानचित्र पर अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। प्रस्तुत लोककथा का संबंध मॉरिशस द्वीप की उत्पत्ति के प्रति संभाव्य जिज्ञासाओं का समाधान करती है और रामायण के प्रति मॉरिशस के लोगों के अगाध प्रेम और सम्मान को दर्शाती है| यह कथा इस बात की भी परिचायक है कि मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु राम के आदर्श न केवल सार्वभौम हैं,बल्कि हर देश,काल और परिस्थिति में अनुकरणीय भी हैं।

एक दूसरी अत्यंत ही रोचक कथा **मुडिया पहाड़** के बारे में है जिसे फ्रेंच में पीटर बोथ नाम से भी जाना जाता है। यह मॉरिशस की दूसरी सबसे ऊंची पर्वत चोटी है जो द्वीप में कहीं भी जायें , दिखाई पड़ती है। यह पर्वत चोटी देखने में किसी व्यक्ति का सर या मूड जैसी प्रतीत होती है। कहा जाता है कि इस स्थान पर स्वर्ग से परियां नृत्य करने आती थीं। स्यमन्तक नामक ग्वाला छिप-छिपकर इन परियों का नृत्य देखता था। एक दिन परियों की रानी ने ग्वाले को नृत्य देखते हुए पकड़ लिया और कहा कि इसके बारे में किसी से न कहना। ग्वाले ने परियों की बात मान ली और ऐसे ही नृत्य देखता रहा। एक दिन अतिरिक्त खुशी और अपने मित्रों के दवाब में आकर वह परियों के रहस्य को खोल देता है। परियों को इस बात का आभास हो जाता है और वे ग्वाले को पत्थर का बना देती हैं| लोककथा संदेश देती है कि किसी को दिया गया वादा

कभी नहीं तोड़ना चाहिए। शपथ भंग का परिणाम क्या होता है, इस लोककथा के माध्यम से रोचक ढंग से समझाया गया है। मॉरिशस के अतीत की प्रत्यक्ष गवाह के रूप में खडी इस पर्वत चोटी पर मॉरिशस के साहित्यकारों ने अनेक लोककथाएं और कविताएं लिखी हैं।

मॉरिशस में वैसे तो पर्यटन की दृष्टि से अनेक खूबसूरत स्थल हैं, लेकिन सात रंगों वाली धरती के लिए यह पर्यटकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह सप्तरंगी भूमि जहां वैज्ञानिकों और भूगर्भ शास्त्रियों के लिए अत्यंत रोचक और अनुसंधान का विषय है, वहीँ इस जगह की उत्पत्ति से संबंधित अनेक लोककथाएं यहाँ के जन जीवन में प्रचलित हैं। **शमारेल की रंगभूमि** नामक लोककथा बड़ी ही रोचक है जिसमें कहा गया है कि देवता गण हर साल होली के दिन यहाँ आते हैं और एक दूसरे पर रंग डालकर होली मनाते हैं इन्हीं रंगों से यहाँ की धरती रंगीन हो गई है। इस लोककथा का मुख्य पात्र डम्मर साधू है, जिसके माध्यम से लोककथा यह संदेश देती है कि तपस्या और मन की एकाग्रता के बल पर मनुष्य कुछ भी हासिल कर सकता है| डम्मर साधू आज भी यहाँ ऊंची चोटी पर ध्यान लगाए बैठा है।

इसी प्रकार **दो यात्री** नामक लोककथा **ले पूस**, जिसे अंगूठा पर्वत भी कहा जाता है, के बारे में है। अरब के दो व्यापारी सोनू और मालू के लालच की लोककथा है जो जलपरी की उदारता और सदाशयता का गलत लाभ उठाना चाहते हैं और अंत में परी के शाप की वजह से अंगूठा पर्वत बन जाते हैं। लालची प्रवृत्ति के कारण मनुष्य को दुष्परिणाम को भोगना पड़ता है , यह लोककथा इस ओर इंगित करती है।

मृग कुंड की लोककथा भी अत्यंत रोचक है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि मॉरिशस का बहुत बड़ा हिस्सा वनाच्छादित है। घने जंगलों के कारण निर्जन होने के बावजूद मॉरिशस की धरती हिंसक जानवरों से पूर्णतया रहित है। यहाँ सांप, चीता, शेर आदि हिंसक जानवरों का भय नहीं है। trou aux cerfs, जिसे मृग कुंड का नाम दिया गया है एक सुप्त ज्वालामुखी है जो सबसे ऊंचे क्षेत्र क्यूर्पिप में है, जिसका निर्माण मानव द्वारा संभव नहीं। इस कुंड का निर्माण कैसे हुआ इसे कथा में वनदेवी के मिथक के माध्यम से समझाया गया है। इस कथा के माध्यम से मॉरिशस के इतिहास के उस पृष्ठ की भी जानकारी मिलती है, जब डच लोगों ने यहाँ के पशु पक्षियों को शिकार करना शुरू किया और विशालकाय डोडो की संपूर्ण प्रजाति को मारकर नष्ट कर दिया, डोडो वर्तमान में यहाँ का राष्ट्रीय पक्षी है। वनदेवी अपनी चमत्कारिक शक्ति से इन शिकारी लोगों से हिरणों की रक्षा करने के लिए विशाल और गहरा कुंड बनाती है। यहाँ आश्रय लेकर वन के ये जीव जंतु अपने प्राणों की रक्षा करते हैं। कालांतर में यह विशालकाय गड्ढा मृग कुंड के नाम से जाना जाने लगता है। इस लोककथाके माध्यम से यह संदेश देने का प्रयत्न किया गया है कि सृष्टि के सुचारू संचालन के लिए प्रकृति और मनुष्य का संतुलन आवश्यक है , संतुलन के बिगड़ने और प्रकृति के कुपित होने का परिणाम समस्त मानव जाति को भोगना पड सकता है। यह कथा प्रकृति की सत्ता के आगे शीश झुकाकर उसका सम्मान करने की प्रेरणा देती है।

मृगकुंड नामक क्षेत्र के बारे में मॉरिशस समाज में एक और कथा प्रचलित है, जिसमें इस कहानी को उस समय के यज्ञ विधान से जोड़कर बनाया गया है ,जब अपनी इच्छापूर्ति हेतु मनुष्य यज्ञ किया करते थे।

परंतु एक समय ऐसा भी आया जब लोग अपने धर्म ज्ञान को भूल गये थे। गौतम बुद्ध की मृत्यु के पश्चात भारत में भयानक अकाल पड़ा। चारों तरफ हाहाकार मच गया तब देवताओं ने यज्ञ करने का संकल्प किया। वे एकांत जगह की तलाश में निकले। तब उनकी नज़र मॉरिशस पर पड़ी। यहाँ उन्होंने मिट्टी का गड्ढा खोद कर यज्ञकुण्ड बनाया और यज्ञ किया। वेद मंत्रों की गूंज और आग की ज्वाला से एक मनोरम दृश्य उत्पन्न हुआ। तब इस द्वीप का नाम 'रुप्य द्वीप' पड़ा। यज्ञ के प्रभाव से भारी वर्षा हुई। धीरे-धीरे जनसंख्या बढ़ने लगी। बाहर से लोग मॉरिशस में बसने हेतु आने लगे। उनमें कुछ समुद्री डाकू भी थे। देवताओं को यह कदापि पसंद न था कि जहाँ पाप का धन गड़ा हो वहाँ वे यज्ञ करें। वे इस देश को छोड़ कर चले गये। उस कुण्ड के ईर्द-गिर्द घास, पेड़ -पौधे जम गए और वहाँ मृगों का बसेरा बन गया। धीरे -धीरे जंगल अदृश्य हो गया और मृग भी न रहे। केवल वह कुंड, एक घृत कूप और एक ऊँचा देवासन रह गया। एक समय में जो कुंड देवकुंड कहलाता था, वह आज मृगकुंड नाम से विख्यात है। मृग कुंड लोककथा का यह संस्करण भी अहिंसा ,लोक कल्याण की भावना और अध्यात्म में प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है।

नैतिक मूल्य :

भारत की विश्व प्रसिद्ध कथाएं ,जैसे पंचतंत्र ,हितोपदेश और जातक कथाएं जन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय हैं और विश्व की अनेक लोककथाओं का आधार कही जा सकती हैं। इन्हीं कहानियों के अनुकरण पर भोजपुरी समाज में भी अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं जिनमें पशु पक्षियों को मुख्य पात्र बनाकर लोगों को, खासतौर पर बच्चों को नैतिक मूल्यों का निर्वहन करने के लिए प्रेरित किया गया है। बच्चे कहानियों के सबसे सुयोग्य पात्र होते हैं। एक तरफ तो उनके मन में कहानियों को सुनने के प्रति रोचकता अन्य पात्रों की तुलना में कहीं अधिक होती है दूसरी तरफ देश का भावी निर्माता होने का कारण वे इन कहानियों में निहित नैतिक मूल्यों के सच्चे संवाहक होते हैं।

मॉरिशस की इस प्रकार की कहानियों में बन्दर,खरगोश,कुत्ता ,हिरन,गाय , बैल, तोता, मैना, गौरैया , डोडो आदि पशु पक्षियों के माध्यम से बच्चों में सदाचार की भावना को विकसित किया गया है। ये पात्र मनुष्यों के साथ संवाद कर सकते हैं, उनकी भावनाओं को समझ सकते हैं और उनके लिए अपनी जान भी दे सकते हैं। इन कहानियों में तिलस्म है, चमत्कार है और कल्पना का प्राचुर्य है, जो इन कहानियों को रोचक बनाता है। दुलारी बहन एक ऐसी ही लोककथा है ,जिसमें विभिन्न पशु पक्षी अपनी सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार दुलारी बहन की रक्षा करते हैं। यह लोककथा पशु और मानव के अटूट संबंधों को उजागर करती है और बताती है कि पशु पक्षियों के प्रति संवेदनशील व्यवहार पशु और मानव के भावनात्मक संबंधों को और दृढ करता है। कछुए की चतुराई नामक लोककथा में दर्शाया गया है कि बुद्धि बल शारीरिक बल से बढ़कर होता है। बेंदी छलती है नामक लोककथा में दुष्ट बंदर की धूर्तता दिखाई गई है, जो अपनी दुष्टता से सबको चोट पहुंचता है, लेकिन अंत में उसको भी चोट पहुँचती है| लोककथा जैसी करनी वैसी भरनी के सिद्धांत पर बल देती है।

इसी प्रकार परियों की कथाएँ भी बच्चों में बहुत लोकप्रिय हैं जो उन्हें एक दूसरे ही लोक में विचरण

कराने ले जाती हैं। इस प्रकार की कहानियों में उड़ने वाला घोड़ा और चार बहनें प्रमुख हैं, जिसमें परियां क्रमशः राजकुमार और चार बहिनों की बहुत सहायता करती हैं। राजा के सर में सींग लोककथा में राजा द्वारा अपनी प्रजा पर अत्याचार करते हुए दिखया गया है, लेकिन लोककथा के अंत में उसे अपनी भूल का अहसास होता है और वो अपने स्वाभाव में परिवर्तन करता है।

धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्य :

भारतीय दर्शन और चिंतन की परंपरा अध्यात्म पर आधारित है और चूँकि मॉरिशस की बहुसंख्यक जनता भारतवंशी है, इसलिए यहाँ की बहुत सी लोककथाएं भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और धार्मिक रीति रिवाजों पर आधारित हैं। इन कथाओं में भारतीय रहन-सहन, सामजिक व्यवस्था ,जप-तप पर्व, व्रतोत्सव ,प्रथा-कुप्रथाएं ,लोक मान्यताएं, विश्वास ,शगुन-अपशगुन, टोना टोटका , लोकोपचार की परंपरा गत पद्धतियां आदि प्रतिबिंबित होते हैं। इन कथाओं के प्रमुख पात्र देवी –देवता होते हैं। अधिकांश कथाओं में भौतिक मूल्यों की तुलना में आध्यात्मिकता मूल्यों को महत्त्व दिया गया है। इन कथाओं में दिखाया गया है कि भगवान् पर अटूट विश्वास और आस्था द्वारा सारे संकटों का परिष्कार किया जा सकता है। सद्चरित्र और परोपकार की भावना से पूर्ण व्यक्ति भगवान् का कृपा पात्र होता है और अपने परिश्रम और ईमानदारी के बल पर संसार के समस्त सुख-साधनों का उपभोग कर सकता है। इस प्रकार की कहानियों में सूरज,चाँद और तारे ,सास और बहु,काग बिडारिन आदि कथाएं उल्लेखनीय हैं।

भाग्य पर विश्वास भारतीय संस्कृति की अनन्य विशेषता है, जो यहाँ की लोक कथाओं में स्थान - स्थान पर दृष्टिगोचर होती है।प्रह्लाद रामशरण ने अनेक कहानियाँ ऐसी लिखी हैं,जिनमें भाग्य की महिमा प्रतिपादित की गई है।ऐसी कहानियों में उड़ने वाला घोड़ा,भाग्य का खेल,राजकुमार सबुर की कथा और मॉरिशस की शकुन्तला उल्लेखनीय हैं भाग्यवान ज्योतिषी भाग्य प्रधान लोककथा का एक बेहतरीन उदाहरण है ,जिसमें बताया गया है कि मनुष्य एक सीमा तक कर्म कर सकता है, लेकिन उस कर्म की सफलता-असफलता उसके भाग्य पर निर्भर करती है। काग बिडारिन नामक लोककथा का एक अंश देखें- राजा का भाग्य ही ऐसा था कि सात रानियों के होते हुए भी वो निस्संतान था। इसी प्रकार मॉरिशस की शकुंतला लोककथा में चित्रित भाग्य की प्रबलता को निम्न वाक्य में देखा जा सकता है :लोग सैकड़ों योजनाएं बनाते हैं,लेकिन भाग्य उन्हें एक ही झटके में चकनाचूर कर देता है। गूलर का फूल लोककथा में सौ साल बाद खिलने वाला फूल रूदा को अपने भाग्य से ही मिलता है और इसी वज़ह से वह गरीब से अमीर बन जाता है।

इसी प्रकार भाग्य का खेल लोककथा में साधू बताता है कि सबसे छोटी राजकुमारी को मुर्दा पति मिलेगा। साधू की यह भविष्यवाणी सत्य होती है,लाख प्रयास करने के बाद भी छोटी राजकुमारी उस जगह पहुँच जाती है जहां एक राजकुमार के शरीर में सैकड़ों सुइयां चुभी हुई थीं, राजकुमारी द्वारा सेवा के बल पर अपने पति के शरीर से सुइयां निकालने के बावजूद अपने दुर्भाग्य के कारण उसे राजकुमार की पत्नी बनने का सौभाग्य नहीं मिलता और नौकरानी छल से राजकुमार की पत्नी बन जाती है। लेकिन भाग्य के सध

जाने पर राजकुमार उसे पहचान जाता है और लोककथा का सुखमय अंत हो जाता है।

राजकुमार सबुर की कथा में भाग्य के अधीन होकर ही व्यापारी की सबसे छोटी पुत्री अपने पिता से सबुर लाने को कहती है, भाग्य से ही राजकुमार को पति रूप में वरण करती है और भाग्य से ही परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि वह अपने पति की रक्षा करने में सफल होती है। इस प्रकार सभी कहानियों में धर्म और अध्यात्म को महत्त्व दिया गया है और धर्म के विविध सिद्धांतों पर चलकर देश और समाज के साथ –साथ वैयक्तिक उत्थान का संदेश भी दिया गया है।

सामाजिक और पारिवारिक मूल्य :

समाजशास्त्रीय दृष्टि से सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों का विशेष महत्त्व होता है क्योंकि इन्हीं मूल्यों द्वारा किसी समाज का प्रतिमान या मानक निर्धारित होता है। ये मूल्य सामाजिक आचरण को नियंत्रित करने के साथ ही उस समाज के आदर्शों ,उचित-अनुचित के निर्धारण ,समाजीकरण, समाज के विकास और उसके प्रमुख लक्ष्यों की प्राप्ति में मुख्य भूमिका निभाते हैं। समाज के सदस्यों में परस्पर संतुलन स्थापित करने में भी इन मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है| लोककथाएं किसी समाज को परिष्कृत और संस्कारित करने में उल्लेखनीय स्थान रखती हैं। मॉरिशस में ऐसी अनेक उपदेशात्मक लोककथाएं प्रचलित हैं जो सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों का खजाना कही जा सकती हैं। इन लोककथाओं में आदर्श परिवार और समाज की कल्पना करते हुए समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए इन मूल्यों का अनुसरण करना आवश्यक और कल्याणकारी बताया गया है| इन कथाओं में सामाजिक और पारिवारिक कुरीतियों और दुर्गुणों से दूर रहने की सलाह दी गई है।एक तरफ आज्ञा पालक पुत्र है ,साहसी नायक है ,पतिव्रता नारियां और सेवा करने वाली संतान है तो दूसरी और ईर्ष्या और द्वेष से परिपूर्ण सास, देवरानी और जेठानियों के नकारात्मक चरित्र भी हैं।

बज़र का किवाड़ नामक लोककथा में सात भाई-बहिन का अद्वितीय प्रेम दिखाया गया है| आवश्यक कार्य से बाहर जाते समय भाई अपनी लाडली बहन से किसी अपरिचित के लिए दरवाजा न खोलने और घर पर ही रहने का निर्देश देकर जाते हैं ,लेकिन संडवा राक्षस भाई बहिन की बातें सुन लेता है और भाई का नकली आवाज़ बनाकर घर में घुस आता है और बहिन को बंदी बना लेता है। जब भाई वापिस आते हैं तो बहिन घर के भीतर से गीत के माध्यम से सारी बात बताती है। एक-एक करके छः भाई अन्दर आते हैं,लेकिन राक्षस उन सबको खा जाता है,लेकिन अंत में सबसे छोटा भाई अपनी समझदारी से राक्षस को मार देता है और बाकी भाई भी उसके पेट से बहार निकल आते हैं। कथा भाई-बहिन के उदात्त प्रेम के माध्यम से भाइयों को बहन की रक्षा के लिए सर्वदा तत्पर रहने का संदेश देती है। पति-पत्नी गृहस्थ जीवन का आधार स्तंभ स्तम्भ होते हैं ,जिनके प्रेम और विशवास पर समाज और परिवार की नींव सुदृढ़ होती है। सबुर की कथा और दासी बनी रानी में पति पत्नी का परस्पर अगाध प्रेम दिखाया गया है। गुलबकावली नामक कथा में पिता के प्रति पुत्र प्रेम दर्शाया गया है। बड़ों का आदर लोककथा में सास का अनादर करने वाली बहु को पत्थर बनाकर इस बात का संकेत किया है कि छोटों को बड़ों का पर्याप्त सम्मान करना

चाहिए| काग बिडारिन तथा कौआ हंकनी कथा में बड़ी रानियों का छोटी रानी के प्रति ईर्ष्या का चित्रण है,कथा के माध्यम से संदेश देने का प्रयत्न किया गया है कि ईर्ष्या का परिणाम भयंकर होता है,जो औरों को नष्ट करने से पहले खुद का विनाश कर देता है। दुलारी बहिन लोककथा में ननद और भाभी के मध्य कटु संबंधो के माध्यम से परिवार में प्रत्येक सदस्य को प्रेम और सौहार्द बनाए रखने का संदेश दिया गया है। मॉरिशस की प्रेम प्रधान कहानियों के माध्यम से विभिन्न पारिवारिक संबंधों में व्याप्त प्रेम ,कर्तव्य और उत्तरदायित्व आदि भावनाओं की प्रबलता और महत्त्व दिखाया गया है। दुःख की पेटी ,औरत और चार घंटे,गुलबकावाली ,सबुर की कथा ,दासी बनी रानी आदि कथाओं में पति-पत्नी के प्रेम को चित्रण है। इस प्रकार की प्रेम कहानियों पर भारतीय संस्कृति और वहां के नायक/नायिकाओं के आदर्श चरित्र का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

इन कथाओं की एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति यह भी है कि इस प्रकार की कहानियों के मुख्य पात्र अधिकतर स्त्रियाँ होती हैं जो अपने साहस,धैर्य ,मधुर स्वभाव और अपनी स्वभावगत विशेषताओं के बल पर परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाती हैं और अपने परिवार को एक सुखमय राह पर ले जाती हैं।

मानवीय मूल्य :

ऐसे मूल्य जो मानव को मानव बनाते हैं और अपने इन गुणों के कारण वे अन्य मनुष्यों का उपकार करते हैं। मॉरिशस समाज की निर्मिति उन मनुष्यों के संघर्ष और त्याग से हुई,जो विवशताओं,मजबूरियों और विभिन्न प्रकार के दवाबों में यहाँ लाए गए थे। और इसी कारण यहाँ की लोककथाओं में समष्टिगत मूल्यों का बाहुल्य है इन कथाओं में अहिंसा दया, त्याग ,धैर्य, संयम, आत्मविश्वास, परिश्रम, ईमानदारी, कर्मठता और राष्ट्र के प्रति निष्ठा जैसे गुण प्रचुर मात्रा में देखे जा सकते हैं। राजकुमार सबुर की कथा ऐसे ही मानवीय गुणों से भरपूर कथा है, जो अपने साहसिक, दुर्लभ गुणों से जीवन में सफलता पाने का संदेश देती है।इसके अतिरिक्त गुलबकावली ,और उड़ने वाला घोड़ा आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं ,जिनमें मनुष्य को अपने धैर्य, साहस और वीरता आदि मानवीय गुणों द्वारा संघर्षों पर विजयी होते दिखाया गया है|

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मॉरिशस की लोककथाएं जन जीवन के आदर्शों और मूल्यों की सच्ची प्रतिबिम्ब हैं। इन लोक कथाओं में जहां जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और उल्लास के चित्र हैं, वहीँ जीवन में आने वाले विभिन्न संघर्षों की झांकी भी है। इन लोक कथाओं का उद्देश्य श्रेयस और प्रेयस है और इसी भावना से प्रेरित ये लोककथाएं श्रोताओं के समक्ष मनोरंजक ढंग से कोई विशेष संदेश, विशेष शिक्षा और विशेष उपदेश को लेकर आती हैं ताकि एक आदर्श परिवार, समाज और देश की परिकल्पना को साकार रूप मिल सके। मॉरिशसीय समाज इन कथाओं के माध्यम से विभिन्न सामाजिक ,सांस्कृतिक ,नैतिक मूल्यों को सुरक्षित रखने का प्रयास कर रहा है ताकि उनके अपने देश और उनके पुरखों के देश की संस्कृति को जीवित रखा जा सके। भोजपुरी लोक कथाओं पर शोध आलेख लिखने से पूर्व अपनी ज्ञान वृद्धि हेतु मैंने मॉरिशस के बहुत से साहित्यकारों से बात की। उनकी बातों से ज्ञात हुआ कि यहाँ की लोक कथाओं पर अपेक्षित शोध कार्य अभी होना शेष है। अकादमिक और शोधकार्य से जुड़े अनुसंधित्सुओं

का यह कर्तव्य बनता है कि वे आगे आएं और सूत्रधार बनकर यहाँ के समृद्ध लोक साहित्य को यथाशीघ्र और यथासंभव लिपिबद्ध करने की दिशा में सक्रिय प्रयास करें। उनके प्रयत्नों से न केवल देश की समृद्ध लोक विरासत को संरक्षित किया जा सकेगा बल्कि यहाँ के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास के तथ्यपरक ढंग से अध्ययन और विश्लेषण करने में भी मदद मिलेगी।

संदर्भ

1. लोक साहित्य विज्ञान ,डॉ. सत्येन्द्र पृष्ठ -03
2. हिंदी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ -68
3. लोक साहित्य की भूमिका ,डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय,पृष्ठ -22
4. कथाकोश,पंडित जगदीश लाल शास्त्री सम्पादित पृष्ठ-30-57
5. Our Oriental Heritage ,W. Durant, The influence of Panchtantra upon the Arabian Nights is beyond question .
6. Encyclopedia Americana, Vol-10, Page-722, India sometimes called the mother of folklore contributed one of the earliest collections ,yet discovered. The Panchtantra {five books} ,which contains stories supposedly current in the 6th century A.D. Encyclopedia Americana,Vol-10,Page722
7. Fables et contes Hindous,p-63
8. भारतीय लोक साहित्य कोश (खंड -१) डॉ. सुरेश गौतम, पृष्ठ -160
9. मॉरिशस:लोक साहित्य और संस्कृति ,प्रहलाद रामशरण,पृष्ठ ,49
10. The list of functions is a bit like a cupboard full of ingredients with which you can make an individual dish. The sequence of function is fixed, because events ted to have a due order. As Peter Barry puts it in Beginning Theory "a house cannot be burgled before it has been broken into. Propp's study is only a first step, albeit a giant one (Introduction to the 1978 in his English Translation of Morphology) Source: The narratologist.com
11. मॉरिशस के भोजपुरी साहित्य, मोरीशस में भोजपुरी साहित्य का उद्भव और विकास ,आलेख लेखक डॉ.मु-नीश्वर लाल चिंतामणि| प्रकाशक :महात्मा गाँधी संस्थान,मोका, मॉरिशस ,
12. सप्तांशु, संपादक- परमानंद गुप्त, पृष्ठ-15,परिचर्चा–मूल्यों का विघटन और सांप्रदायिक साहित्य
13. तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना , डॉ. राजेंद्र प्रसाद ,पृष्ठ-155
14. मॉरिशस की रोचक लोक कथाएँ, प्रहलाद रामशरण ,प्रस्तावना ,1989

❒❒❒

1. केंद्रीय हिंदी निदेशालय ,शिक्षा मंत्रालय,भारत सरकार

ई मेल : pandeynutan91@gmil.com, मोबाइल :91-7303112610

रजनी मोरवाल की कहानियों में समकालीन युगबोध

–नेहा साव

'सार संक्षेपण (Abstract): रजनी मोरवाल ने 'हवाओं से आगे' कहानी संग्रह में अपने लेखनी से हर तबके के अंतर्मन की पीड़ा, चुभन और अनुभूतियों को जीवंत साँचे में रूप-रंग देने का उत्तम प्रयास किया है। उन्होंने आधुनिक शहरी, ग्रामीण जीवन से लेकर सीमा पर तैनात सिपाही के रोजमर्रा की गतिविधियों एवं समाज से बहिष्कृत किन्नर जीवन को अपने लेखन में उतारा है। कथाकार के रचना-शैली के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि उनकी अधिकतर कहानियाँ वास्तविक घटनाओं पर आधारित है। समसामयिक मुद्दों को बारीकी से अपनी कहानियों में दर्शाने हेतु इन्हें समाजदर्शी कथाकार कहने में अतिशयोक्ति न होगी। इस संग्रह की 'साथिन', 'दीपमालिका', 'मालकिन', 'जोगिया छवीली', 'चप्पा', 'कोलाबा की बा', 'वे अब यहाँ नहीं रहते' और 'खाली बोतल' कहानियों में विषयगत भिन्नता और मौलिकता परिलक्षित है। इस दृष्टि से रजनी मोरवाल की कहानियाँ जीवन एवं जगत को गहराई से अनुशीलन करने की गुंजाइश रखती है, जिसे इस शोध पत्र में पुष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

बीज शब्द (Key Words) : समकालीन जीवन, सांप्रदायिक सौहार्द्रता, मध्यवर्गीय संघर्ष, खानाबदोश जनजाति, किन्नर व्यथा, कश्मीर समस्या

हिंदी साहित्य में समकालीन कथाकारों की फेहरिस्त लम्बी होती जा रही है। कथा सृजन में कलम आजमाइश की भी बढ़ोत्तरी हुई है। ऐसे में साहित्यकारों की गुणवत्ता उनके लेखन की अधिकता से नहीं बल्कि सार्थकता और वैधता के आधार पर होनी चाहिए। इस दृष्टि से रजनी मोरवाल का नाम खासे चर्चा में है। पद्य साहित्य में नाम अर्जित करने के साथ-साथ वे कविता, गीत, ग़ज़ल एवं कथा साहित्य आदि विधाओं को अपने लेखन से निरंतर समृद्ध कर रही हैं। इनकी

महानगरीय जीवन के कई पहलू हैं। आज की युवा पीढ़ी शहरीकरण की नीति से इस कदर प्रभावित है कि उनके सफलता और असफलता के सपनों की नींव शहरों की खूटियों से बंध चुकी है। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार भारत की 79.78 % जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी जो वर्ष 2011 के जनगणना के अनुसार 68.70 तक सिमट गई।

प्रमुख कृतियों में 'सेमल के गाँव' (कविता संग्रह), 'धूप उतर आयी', 'अंजुरी भर प्रीति' (गीत संग्रह), 'गली हसनपुरा' (उपन्यास) 'कुछ तो बाकी है', 'हवाओं से आगे' और 'नमकसार' आदि कहानी संग्रह विशेष रूप से चर्चित रहे हैं। उनकी कहानी संग्रह 'हवाओं से आगे' और 'नमकसार' साहित्य जगत में अपनी अलग पहचान बनाने के पायदान पर है। दोनों कहानी संग्रह तत्कालीन जीवन की छवि उभारने में काफी हद तक कामयाब रही है। इन कहानियों में घटनाओं और जीवन स्तर की भिन्नता के साथ मानव मन के परतों को खोलने की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है।

रजनी मोरवाल आधुनिक कथाकारों में एक ऐसी कड़ी हैं, जो मानवीय संवेदनाओं को साध्य नहीं बनाती बल्कि जन-जीवन के ऐसे पहलूओं को जाँचती-परखती हुई आगे बढ़ती हैं कि इनके लेखन के कैनवस में अनगिनत रंग मुस्कुरा उठते हैं। रचनाकार की खासियत ही कही जाएगी कि इनके रचना-संसार में अलग-अलग जीवन के फूल एक साथ खिले हुए हैं। संग्रह की कहानियों को पढ़ते हुए कही भी एकरसता का अनुभव नहीं होता है। हाँ, इतना जरूर है कि अलग-अलग जीवन पर कलम चलाते हुए भी स्त्री पीड़ा, स्त्री स्वतंत्रता एवं अनुभूतियाँ अनायास ही लेखिका की कमोवेश हर कहानी में अपनी उपस्थिति दर्ज करती है। आधुनिक जीवन में अलग-अलग समस्याओं और अलग-अलग साँचे की जिंदगी को कथाकार ने बहुत ही बारीकी से भाषाई जामे में डालकर प्रस्तुत किया है। सृजन की इस खासियत के कारण रजनी मोरवाल को किसी एक साँचे में फीट नहीं किया जा सकता। उनकी विभिन्न कहानियों में 'ग्रे शेड्स' की बात करें तो यह कहानी आधुनिक युवा पीढ़ी के असंतुष्ट जीवन को बखूबी उजागर करती है। व्यक्ति आज सहमति या सलीके से नहीं बल्कि एडजस्टमेंट के ढंग से जी रहा है। वह जीवन में हर चीज अपने तरीके से पाना चाहता है और इसी चाह में वह अपने निजी रिश्तों से दूर होता चला जाता है। लेखिका ने बहुत ही सादगी से 'मेल-इगो' और उससे जूझते पुरुष के जीवनचर्या को बयां किया है—"इतना सुकून वर्षों बाद मेरी पलकों पर उतरा था...उसकी तड़पन का दुःख मुझमें सुकून भर गया था कि प्रतिमा ने मुझे बारहा मिस किया था चाहे मेरे जीवन में मैंने प्रतिमा या किसी और स्त्री की ख़लिश को उतनी शिद्दत से महसूस न किया था किन्तु एक मरदाना ईगो मेरे पुरुषत्व को संतुष्ट कर गया था।"1

मौजूदा दौर में ये कहानियाँ बदलती दुनिया की एक परिष्कृत छवि हमारे सम्मुख पेश करती हैं। 'साथिन', 'दीपमालिका', 'मालकिन', 'चप्पा' और 'खाली बोतल' जैसी कहानियाँ बदलते मूल्यों, रिश्तों के अधूरेपन और अंध-बधिर सामाजिक तत्वों का जायज़ा लेती हुई नजर आती है। उनकी विषयगत विविधता एवं कहानियों के संबंध में उक्ति रही है कि—"रजनी मोरवाल का साहित्य जगत में एक महत्वपूर्ण मुकाम है।...विषयों की विविधता के साथ उनकी कहानियों के पात्र अपना परिदृश्य भी पाठकों के समक्ष जीवंत करते चलते हैं।"2 'साथिन' कहानी में ऐसी विषयगत विविधता एवं मौलिकता देखी जा सकती है। इस कहानी में लेखिका ने रामप्यारी के माध्यम से एक साधारण ग्रामीण स्त्री के गृहस्थ जिम्मेदारियों में स्वयं को झोंकने और उसके आत्ममंथन को उर्जाशक्ति के रूप में उभारा है। वह एक जड़ स्त्री नहीं है लेकिन जड़वत सारे परिस्थितियों में खुद को साधे रखती है। अंततः उम्र के अंतिम पड़ाव में वह बेटे-बहू की जरूरतों का साधन मात्र बन कर रह जाती है। असल में, यह कहानी वृद्धाश्रमों और मंदिरों के आश्रयों

में जी रहे वृद्ध-वृद्धाओं के जीवन सत्य को उद्घाटित करता है—"अपना गुजारा खुद चलाना सीख ही लिया होगा अब तक तुम दोनों ने ! हमने सारा रुपया-पैसा धर्मशाला में दान देकर अपने बचे-खुचे जीवन के लिए एक कमरे का इंतजाम कर लिया है। बच्चों को बहुत प्यार !...साथिन कृष्णा प्यारी।"3 अमूमन, यह कथा एडवांस समाज का कबाड़ समझे जाने पूर्व पीढ़ी के प्रति संस्कारगत हनन एवं उपेक्षित बर्ताव से पाठकों को सजग करती हुई नजर आती है।

रजनी जी ने इस कथा-संग्रह में घटनाओं और पात्रों को विशेष महत्व दिया है। 'जोगिया छवीली' एक पात्र प्रधान कहानी है जिसमें जोगिया और छवीली के शुद्ध सात्विक प्रेम का चित्रण है। लेकिन इस प्रेम चित्रण में लेखिका ने खानाबदोश जनजाति कालबेलिया के परम्पराओं, रीति-रिवाजों और इस जनजाति के नवयुवक-युवतियों के प्रगतिशील विचारों को सकारात्मक अभिव्यक्ति दी है। साधारणतः डेरे के बाशिंदे अपने रीतियों और परम्पराओं की तिलांजलि नहीं देतें। किंतु इस कहानी में हाशिये पर संघर्षशील कालबेलिया जनजाति के जीवन में नवीन सूरज के आगाज को नूतन वाणी देने की कोशिश की गई है। एक ओर खानाबदोश जनजाति के जीवन दशा को उजागर किया गया है तो वहीं दूसरी ओर 'ऑपरेशन विजय से अंतिम ख़त' में देश भक्त अमानत अली के सरफ़रोशी के जज्बे के लिए अपना जीवन न्यौछावर करने वाली साहिला की संघर्ष कथा को व्यक्त किया गया है। अमानत अली के देश-सेवा तथा समर्पण की खातिर साहिला का सम्पूर्ण जीवन जिम्मेदारी और संघर्षों का पूंज बनकर रह जाता है। मूल रूप से यह कहानी कारगिल युद्ध के उन स्मृतियों को पुनर्जीवित करती है जिसमें भारत के 527 सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए और अंततः इस युद्ध में भारत ने अपना परचम लहराया। वृहत् परिपेक्ष्य में अमानत अली और साहिला का संघर्ष भारतीय सैनिक परिवारों के कष्टों और क्षति की जीवंत तस्वीर है जिसे सैनिक परिवार पूरे हिम्मत और साहस के साथ स्वीकार करते हैं। रजनी जी का कथा- संसार वैविध्यपूर्ण है। संवेदनात्मक धरातल पर उनकी कहानी 'कोलाबा की बा' मछुआरों के दर्द और मुस्कराहट से लिपटी हुई है। मुंबई का कोलाबा प्राचीन काल से ही निम्नमध्यवर्गीय मछुआरों के जीवन यापन का स्रोत बना हुआ है। यहाँ के समुद्री तटवर्ती इलाकों में लाखों मछुआरे मत्स्य उत्पादन कर अपनी गृहस्थी की गाड़ी खींच रहे हैं। कोलाबा से हर तरह के छोटे-बड़े मछुआरे देश-विदेश में मछली व्यापार चलाते हैं। इन्हीं के जीवन-सरणी से जुड़ी कहानी 'कोलाबा की बा' छोटे-छोटे मछुआरों के आशा, उम्मीदों और विश्वास की कहानी है जिसे पढ़ने से अनायास ही नागार्जुन के बहुप्रसिद्ध उपन्यास 'वरुण के बेटे' का चित्र हमारे मानस पटल पर उभर आता है। यद्यपि 'वरुण के बेटे' और 'कोलाबा की बा' की पृष्ठभूमि एवं उद्देश्य में काफी अंतर है। चूँकि यह कहानी नंदू, उसकी बा और रानी के इर्द-गिर्द बुनी गई है। नंदू अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए हर संभव प्रयास करता है और इसी प्रयत्नवश वह समुद्र का ग्रास बन देश की सीमा पार कर पाकिस्तान की जेल की सलाखों में कैद हो जाता है। सचमुच, यह कहानी मछुआरों के जीवन की वास्तविक तस्वीर उभारती हुई दृष्टिगत होती है जो अपनी परिस्थिति, हालात और तंगी की थपेड़ों से जूझते हुए उफनते समुद्र में जान की बाजी लगाकर समुद्र में छलांग लगाते हैं और बदकिस्मती से विदेशी जेलों में गुमनामी की जिंदगी बिताने के लिए बाध्य हो जाते हैं। लेखिका ने नंदू के चरित्र से मछुआरों के जीवन-चक्र को समदर्शी बनाने की अतुल्य पहल की

है। यह कहानी यथार्थ घटना की सशक्त प्रतिछवि है जिन्हें पकिस्तान की जेल से 8 जनवरी 2018 को रिहा कराया गया था। साथ ही उनके परिवार की आस्था और विश्वास को जाहिर करता है, जिसके आधार पर नंदू की माँ अपने बेटे के इन्तजार में पाँच वर्ष गुजार देती है लेकिन अपने विश्वास को डगमगाने नहीं देती।

भारतीय सभ्यता, संस्कृति, पारिवारिक ढाँचे में वैश्वीकरण की हवा ने काफी परिवर्तन ला दिया है। उदारीकृत भारत में जिंदगी के मानदंड बदल गए है। सामूहिक अथवा पारिवारिक विकास का स्थान वैयक्तिक एवं निजी विकास ने ले लिया है। इस संग्रह में पारिवारिक विघटन, एकाकीपन एवं इन्तजार को बड़ी शिद्दत से सहेजा गया है। विशेषकर मध्यवर्गीय परिवार इस उतार-चढ़ाव को झेलने के लिए बाध्य है, जहाँ माँ-बाप अपने बच्चों को अच्छी तालीम देने के लिए अपने जीवन की हर छोटी-बड़ी खुशियों का गला घोंट कर उन्हें जीवन प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए उन्हें विदेश तक भेजते हैं और अतंतः उनके शिक्षित होकर विदेश बसने के उपरांत जीवन के अंतिम पड़ाव में खाली बोतलों के समान स्वयं को खाली महसूस करते हैं ! 'हवाओं से आगे' संग्रह की महत्वपूर्ण कहानी 'खाली बोतल' भी कुछ ऐसा ही परिदृश्य हमारे सामने पेश करती है, जहाँ शिखा और प्रशांत अपने निजी सपने, शौक और प्रतिभा को परे रखकर अपने बच्चों को एक अच्छी परवरीश देते हैं और उनके बच्चे उन्हीं माँ-बाप से कटकर विदेश में अपनी नयी दुनिया गढ़ लेते हैं। एक ऐसी दुनिया जहाँ दो पीढ़ी एकसाथ तालमेल नहीं बिठा पाती। फलस्वरूप प्यार और सम्मान होने के बावजूद भी दोनों पीढ़ियों के मध्यस्थ न भरने वाला खालीपन रह जाता है जिससे वे आपसी जुड़ाव महसूस नहीं कर पाते। दिलचस्प बात यह है कि लेखिका ने दो पीढ़ियों के सोच, समझ, जरूरत, खामियों और लगाव को बड़ी ही सहजता से व्यक्त किया है जहाँ पीढ़ीगत अंतर को जबरन थोपने की कोशिश किसी में भी नहीं दिखाई पड़ती।

महानगरीय जीवन के कई पहलू हैं। आज की युवा पीढ़ी शहरीकरण की नीति से इस कदर प्रभावित है कि उनके सफलता और असफलता के सपनों की नींव शहरों की खूटियों से बंध चुकी है। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार भारत की 79.78 % जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी जो वर्ष 2011 के जनगणना के अनुसार 68.70 तक सिमट गई। हालिया वर्षों में ये आंकड़े और भी घटते जा रहे हैं। 'चप्पा' कहानी भी ऐसे ही नवयुवक रामभरोसे की कहानी है जो गाँव का सीधा-सरल जीवन व्यतीत कर शहर में साधारण-सी खलासी की नौकरी पाता है। शहरी तौर-तरीके समझने और उसमें रचने-बसने के बावजूद भी वह शहरी प्रवृति और संस्कृति को पूरी तरह न तो स्वीकार पाता है और न ही आत्मसात कर पाता है। इन समस्याओं के साथ लेखिका ने सरकारी अफसरों की भी पोल खोली है जो अपने से नीचे चपरासी और खलासी पद पर काम कर रहे मुलाजिमों को निजी नौकर की तरह घरेलू कामों के लिए नियुक्त कर लेते हैं अर्थात् वह सरकारी पैसे पर सरकारी अफसरों के झाड़ू-पोछा और बर्तन धोने का काम करें। इसी दौरान रामभरोसे का पाला शहर में पल रहे अपसंस्कृति से पड़ता है। शहरी रफ़्तार में आज 'यूज़ एंड थ्रो' की प्रवृति बहुत आम हो चली है और ऐसे परिवेश में रामभरोसे एक 'यूज़ेबल आर्टिकल' के अलावा कोई महत्व नहीं रखता। शहरी परिवेश में रहकर न तो वह शहरी तौर-तरीके अपना पाता है और न ही गाँव लौटकर अपने

स्वाभाविक अस्तित्व को निखार पाता है। उसकी स्थिति बिल्कुल उस चप्पे के समान हो जाती है जिसका प्रयोग केवल निजी सुविधाओं के लिए किया जाता है। रामभरोसे के शब्दों में—“बेटा यह जो चप्पा है न, ये मैं हूँ ! जिस तरह इस चप्पा के तनिक से सहारे के साथ जूते पहनने में आसानी होती है न ठीक उसी तरह मुझ गंवार ने इस गृहस्थी की गाड़ी चलाने में सहायता की।”4

ऐसा नहीं है कि लेखिका ने महानगरीय जीवन के केवल नकारात्मक पक्ष को ही उजागर किया है उन्होंने यथासंभव शहरी परिवेश में पल रहे अनायास शुद्ध और स्वाभविक रिश्तों को भी अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। मानवीय रिश्तों की एक ऐसी ही कड़ी लेखिका ने ‘सूत का बंधन’ में दर्शाने की चेष्टा की है। सुरेखा एक ऐसी स्त्री है जो अपने पति और बच्चों के साथ मुंबई में गृहस्थी बसा चुकी है पर वह शहर की तेज-तर्रार और सिकुड़न भरी जिंदगी से उब चुकी है। असल में, अपने गाँव से दूर मुंबई जैसे शहर में बसी-बसाई जिंदगी सुरेखा को कभी रास ही नहीं आई। ऐसा इसलिए भी है कि शहरों में जिंदगियों की व्यस्तता ने रिश्तों के मूल्य-चेतना और प्रगाढ़ता को निचोड़कर शुष्क बना दिया है। इन सभी भावनाओं के लिए एक ही विकल्प रह गया है – ‘जरूरत और जीविका’। इन परिस्थियों में मनुष्य आतंरिक रूप से एकाकी, तनावपूर्ण, असंतुष्ट और असंतुलित जीवन जी रहा है। रजनी जी की कहानियों में एक बात कॉमन है कि सारी कहानियाँ लगभग मध्यवर्गीय परिवार और समाज को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं। इन सारे परिस्थितियों के मध्य स्त्री जीवन की दशा-दिशा, चिंता, मजबुरी एवं बेबसी के साथ ही स्वछन्द और बोल्ड रूप में सहने और स्वीकारने का साहस भी इनके पात्रों में परिलक्षित है। सुरेखा दैहिक रूप से शहरी जीवन में रच-बस चुकी है परन्तु मानसिक रूप से वह आज भी अपने गाँव की मिट्टी और आबोहवा से जुड़ाव महसूस करती है। केवल सुरेखा ही नहीं उसकी तरह जीविका के उहापोह में लगे एम एच 01 का टैक्सी ड्राइवर भी शहरी जीवन के सिकुड़न के बावजूद अपने वजूद में बसे इंसानियत और संस्कारों को जिलाए रखता है—“उस रोज सुरेखा ने मंदिर में रखे कच्चे सूत के धागों की कई-कई लड़ियाँ आपस में पिरो कर एक और राखी बनाई थी जिसे उसने एम एच 01 ड्राईवर भैया के हाथों में बड़े स्नेह से बांध दी थी। सच ही कहा है किसी ने-“स्नेह का बंधन यदि स्वार्थहीन व सच्चा हो तो कच्चे सूत के धागों से भी टिका रहता है।”5

जीवन के इन्हीं प्रसंगों के मध्य लेखिका ने कश्मीर समस्या पर भी सुधी पाठकों का ध्यान खींचा है। मौजूदा दौर में कश्मीर समस्या हमारे देश का एक ऐसा घाव है जिस पर समय-समय पर मरहम लगाने का यत्न किया गया है। लेकिन ये मरहम वर्षों से पेट की ऊपरी सतह पर लगाए जाते रहे हैं जबकि घाव पेट के भीतरी हिस्से में है ! देश की तत्कालीन सरकार ने इस घाव को अनुच्छेद 370 हटाकर भारत में अखंडता का परचम लहराया। लेकिन इस अखंडता से आगे बढ़कर जीवन मूल्यों की छटपटाहट को कहानीकार ने कश्मीरी जन-जीवन में घटने वाली अमानवीय कृत्यों द्वारा ‘वे अब यहाँ नहीं रहते’ कहानी में व्यक्त किया है। देश का अभिन्न हिस्सा कही जानी वाली कश्मीरी जन-जीवन हर क्षण नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य है। देश के अन्य कोनों से अलहदा कश्मीरी अवाम स्वतंत्र भारत की 74वीं वर्षगाँठ मनाने के बाद भी धर्म निरपेक्ष एवं जनतांत्रिक भारत की आबोहवा को महसूस नहीं कर पा रही है ! रजनी जी नाजिम, उत्तरा एवं टूरिस्ट गाइड के माध्यम से इस समस्या का संवेदनात्मक और जीवंत तस्वीर पेश करती हैं। प्राकृतिक

ख़ूबसूरती की मिशाल मानी जानी वाली कश्मीर में वाकई बदसूरती काबिज होती जा रही है। वहाँ आम जीवन की मुश्किलें बढ़ती जा रही है जिसे न तो सरकार समझ रही है न ही जिहादी ! टूरिस्ट गाइड के शब्दों में कहें तो—"यहाँ तो साल के ग्यारह महीने छुट्टियाँ ही रही हैं जी।" गाइड के कहने का मतलब सभी को स्पष्ट था। आये दिन अखबारों में आतंकवादियों व सेना के बीच होने वाली झड़पें, पत्थरबाज़ी, गोलीबारी की ख़बरें, यहाँ अब आम हो चुकी हैं। कई-कई दिनों तक लगने वाले घोषित-अघोषित कर्फ़्यू ने जीवनचर्या को ख़ासा प्रभावित किया है। क्या स्कूल ? क्या किताबें ? जब साँसें ही मोहताज़ हो आज़ाद हवा की तो ऐसे में न भूतो न भविष्यति...यहाँ सिर्फ़ और सिर्फ़ वर्तमान जीता है।"6 स्पष्ट है कि स्थिति और भयावह हो गई है और ऐसे विकट परिस्थितियों में कश्मीरी जनता को इसका सबसे अधिक खामियाजा भुगतना पड़ रहा है।

विभिन्न आँकड़े बताते हैं कि विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारतीय विदेशों में रोजगार और शिक्षा के लिए अधिक गमन करते हैं। लेखिका ने इन तथ्यों को बड़ी साफगोई के साथ भारतीय जनजीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को कहानियों में उजागर किया है। 'दीपमालिका' कहानी में मालिका का जीवन उस दुःख और पीड़ा का पर्याय है, जहाँ मालिका के पति के गुजर जाने के बाद दोनों बच्चों का पालन-पोषण कर उन्हें अच्छी शिक्षा मुहैया कराती है। वह अपने बच्चों को इतना सक्षम बनाती है कि वे अपने बुते जीवन जीने के काबिल बन सकें। लेकिन अंततः मालिका के साथ बचती है तो उसका एकाकीपन, जिसे वह वृद्धाश्रम के बूढ़े-बुढ़ियों के साथ बाँटने की चेष्टा करती है। वैश्विक युग में ये वाकये आम हो चुके हैं। अपने परिवार से विच्छिन्न या कटकर दूर परदेश में जीवन यापन करना और वर्ष में मात्र एक बार स्वदेश की मिट्टी और माता-पिता के खालीपन को भरना आज के जीवन-शैली का एक नया ढंग बन चुका है। इसके अतिरिक्त लेखिका ने महानगरीय जीवन को भी अपनी कहानियों में साँझा किया है। महानगरों की चमचमाती दुनिया देखने में बेहद रोमानी और दिलचस्प लगती है। भागती-दौड़ती गाड़ियाँ, ऊँची-ऊँची इमारतों के समान महानगरों में बसने वाले लोगों की जिंदगी भी ऊँचे सपनों से लबरेज़ भागती-दौड़ती नजर आती है।

संग्रह की अंतिम एवं महत्वपूर्ण कहानी 'हवाओं से आगे' धर्म, जाति, संप्रदाय जैसे संकुचित भावनाओं से परे प्रेम को जीवन की कुंजी बनाने का संदेश देती है। कहानी में अतुल तथा ज़ाहिदा का प्रेम-विवाह दो धर्मों और संस्कृतियों के बीच व्याप्त भिन्नता, खामियों एवं बंदिशों से इतर मोहब्बत और उसके सामर्थ्य को व्यक्त करता है। हिंदू-मुस्लिम धर्म से वास्ता रखने के बावजूद अतुल और ज़ाहिदा द्वारा एक-दूसरे का साथ निभाने का संकल्प धर्म की दिवार को तोड़कर स्वार्थमुक्त प्रेम और आत्मीयता का प्रतीक बन गया है। इसी सन्दर्भ में युवा आलोचक अखिलेश्वर पाण्डेय का कथन है—"रजनी मोरवाल की कहानी 'हवाओं से आगे' दो भिन्न सम्प्रदायों के पति-पत्नी के आपसी रिश्ते को बयां करती है...रजनी मोरवाल ने ज़ाहिदा के माध्यम से एक समझदार और मजबूत स्त्री चरित्र का गठन किया है।"7 कहानीकार ने ज़ाहिदा के रूप में समाज के समक्ष एक विलक्षण स्त्री पात्र को गढ़ा है। विपरीत सामाजिक और पारिवारिक परिवेश से जूझकर ज़ाहिदा और अतुल एक-दूसरे का साहस और सहारा बनते हैं। विषय-वस्तु के विश्लेषण से स्पष्ट है कि लेखिका सामाजिक आईने में धुंधले पड़े हिस्से को परिष्कृत कर पाठकों के समक्ष प्रश्न खड़ी करती हैं। आखिर धार्मिक कट्टरता और प्रेम में किसे सर्वोपरि और सार्वभौमिक माना जाए ? क्या आज समाज को

प्रेम की नयी व मॉडर्न परिभाषा की जरूरत है, जहाँ प्रेम जाति, धर्म और संप्रदाय की पूंछ पकड़कर आगे बढ़े! लेखिका ने यहाँ आधुनिक शिक्षित उन्मुक्त मध्यवर्ग की ओर इशारा किया है। अतुल और ज़ाहिदा की लड़ाई सीमित सोच और सिस्टम से है जिससे जीतना सहज नहीं। अस्तित्व के इस लड़ाई में वे अपनी भावी पीढ़ी में भी आजाद ख्याल और ज़ज्ब की नींव डालते हैं। लेकिन इस संघर्ष से आगे बढ़ते हुए रचना कहीं-कहीं यथार्थ से अलग वायाबी महसूस होती है बवजूद इसके यह नयी पीढ़ी के अत्याधुनिक जीवन-शैली को चुनौती के रूप अभिव्यक्त करती है जो संस्कृति समन्वय या संकर संस्कार की देन कही जाएगी। 'लिव इन रिलेशनशिप' भूमंडलीय जीवन प्रवृति के कारण महानगरीय जीवन में आम हो चुकी है। दरअसल, लेखिका एक साथ न्यू जनरेशन में पनप रहे सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों को बेबाक अंदाज में दर्ज करती हैं। कुल मिलाकर वे जातिवाद के जहर से जूझते अतुल और ज़ाहिदा की आवाज में अपनी आवाज बुलंद करती हैं तो वहीं उनकी बेटी महक तथा उसके मित्र अल्ताफ के माध्यम से जातिवाद से अलग आजाद और उन्मुक्त समाज की परिकल्पना करती हैं। कहानी का मूल मोटो यही है कि सारी विद्रूपताओं और नकारात्मकता का एक ही सार्थक विकल्प है - 'प्रेम'। इस क्रम में कहानीकार ने बदलते जीवनादर्शों के रुख़ को पकड़ने की दक्षता दिखाई है तथा साथ ही मानवता और मानव विरोधी तत्वों का तुलनात्मक दृश्य उकेरने का प्रयास किया है। अतः कहानी धार्मिक कट्टरता और सांप्रदायिक उन्मादों से ऊपर उठकर सौमनस्य और सौहार्द की भावना को बढ़ाने और फैलाने का संदेश देती है।

भाषा तथा शिल्प की दृष्टि से रजनी जी का कथा-संसार वैविध्यमय है। उनकी कहानियाँ जीवन के अनगिनत पहलूओं की शिनाख्त करती हैं। पात्र और परिवेशानुकूल ये रचनाएँ जीवंत और सजीव प्रतीत होती हैं। 'साथिन' कहानी की रामप्यारी ग्रामीण जीवन में रची-बसी घरेलू स्त्री है। उसकी भाषा में गाँव की महक मिलती है, वही 'कोलाबा की बा' अपने संदर्भानुकूल बम्बइया हिंदी और मराठी भाषा के शब्दों से सनी हुई है जिसमें लेखिका ने लोकगीतों का प्रयोग किया है—"गल्यान साखली सोन्याची, ही पोरी कोना ची, आईच बी काली, अणे बपूच भी काला, ही गोरी पोरी कोना ची"8 इस प्रकार के प्रयोग कथा-वस्तु और शिल्प की दृष्टि से अन्यतम है। इसके अतिरिक्त इनके कला सृजन में कहीं-कहीं विषयगत गहन दृश्यों का अभाव है किन्तु कथा जिस प्रवाह तथा वेग से आगे बढ़ती है पाठक समुदाय को संवेदनात्मक स्तर पर रिक्तता का आभास नहीं होता है। संग्रह की कहानियों में अंग्रेजी, उर्दू, मराठी, भोजपुरी, मारवाड़ी आदि शब्दों का प्रयोग भाषा को स्पन्दनीय बनाती है। अतः भाषा में प्रवाह और गति सक्रिय और सुरुचिपूर्ण दिखाई पड़ती है। सारतः इनकी कहानियाँ वाद और सिद्धांत के दायरे से परे है। कथा-कलेवर तथा सृजन कला की दृष्टि से कहा जा सकता है कि रचनाकार ने युगीन सन्दर्भों के साथ-साथ हाशिए पर दम तोड़ रही मर्यादाओं, दायित्वबोध और विघटनकारी वृतियों को व्यक्त किया है। ये रचनाएँ समय की चुनौतीपूर्ण उलझनों को पुनर्परिभाषित करने का अटूट साहस रखती है। इनकी कहानियों में एक बेहतर कल की चिंता और परिवर्तन की परिकल्पना के संकेत मिलते हैं जो इन्हें समकालीन रचनाकारों में पठनीय बनाती है।

संदर्भ

1. मोरवाल, रजनी, हवाओं से आगे, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण 2019, पृ. 24.

2. https://m.facebook.com/story.php?story_fbid=166648784877275&id=106917460850408
3. मोरवाल, रजनी, हवाओं से आगे, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण 2019, पृ. 46.
4. वही, पृ. 84.
5. वही, पृ. 109.
6. वही, पृ. 120.
7. पाण्डेय, अखिलेश्वर, 'जिंदगी के राग-रंग की कहानियाँ', परिकथा (द्विमासिक), अंक 79, मार्च-अप्रैल, 2019, पृ. 4.
8. मोरवाल, रजनी, हवाओं से आगे, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण 2019, पृ. 65.

❐❐❐

1. 506/12/2, आर. बी. सी. रोड, राजबंदीगढ़ डाक – गरिफा, जिला – उत्तर 24 परगना, पिन – 743166 (पश्चिम बंगाल)
मो. 08646843757, ई-मेल : nehashaw468@gmail.com

प्रपत्र 4 (नियम 8)

1. प्रकाशन का स्थान : नई दिल्ली
2. प्रकाशन की आवर्तिता : त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम : आभा पब्लिसिटी
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : 163, देशबंधु गुप्ता मार्केट, करोलबाग, नई दिल्ली
4. प्रकाशक का नाम : आशीश कुमार
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एडी–94–डी, शालीमार बाग, दिल्ली–110088
5. संपादक का नाम : आशीष कुमार
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एडी–94–डी, शालीमार बाग, दिल्ली–110088

मैं आशीष कुमार यह घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

आशीश कुमार
प्रकाशक

संबलपुरी लोकगीतों में समाज का स्वरूप

– श्री राजीव पुटेल

गीत का भावार्थ यह है कि लड़के की माँ को बहुत ही कम दिनों में एक बहू चाहिए। वह लड़के की माँ को अपने बेटे के लिए उसकी बेटी का हाथ माँगती है। तब लड़की की माँ कहती है कि ये तो बहुत छोटी है। खान बनाना,लिपा पोती तथा अन्य घरेलू काम काज भी नहीं जानती।

लोकप्रियता की दृष्टि से लोकसाहित्य की विभिन्न विधाओँ में से लोकगीत सर्वोपरि है। लोकगीत वह गेय गीत है जिसमें जन मन का अनुरंजन सदा होता रहा है। ये गीत किसी जाति,समूह की लोक संस्कृतियों का परिचायक होता है और मन मस्तिष्क का साहस इसमें देखा जा सकता है। लोकगीत आदिम मानव समाज के सांस्कृतिक गौरव का ऐतिहासिक दस्तावेज होता है। लेकिन इसमें इतिहास का हू-ब-हू चित्रण नहीं होता। इसमें मानव संस्कृति का सारल्य विद्यमान होता है तथा भावों की रसपूर्ण तथा मधुरतम रूप की मौखिक अभिव्यक्ति होती है।

पश्चिम ओड़िशा भारत का पिछड़ा इलाकों में से है। (जानकारी के लिए बता दूँ कि आजकल लोग संबलपुरी को कोशली नाम देने लगे हैं और पश्चिम ओड़िशा को कोशल प्रदेश। दशक पहले से कोशल को स्वतन्त्र प्रदेश की माँग ले कर आंदोलन चलता रहा है।) ज्यादातर लोग कृषि तथा मजदूरी करनेवाले हैं। समाज में आदिवासियों की संख्या सर्वाधिक है। इनकी संस्कृति समाज की सीमाओं में बंधी हुई है। इसलिए इनके गीतें में आंचलिकता ही उभरकर आती है। ऐसा भी कह सकते हैं कि लोकगीतों से पश्चिम ओड़िशा की संस्कृति का बड़ा हिस्सा प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ पर श्रम आधारित(हलिआ गीत) तथा अवसर विशेष (पर्व-त्योहार) से संबंधित लोकगीत ही ज्यादातर सुनने को मिलता है।

संबलपुरी लोकगीतों का सबसे बड़ा गुण है कि यह श्रोता को अपनी तरफ खिंचता है। इन गीतों में इस अंचल विशेष का विविध रूप उभर कर सामने आता है। गीत देवी वंदना से शुरु होता है। गायक के मनोभाव के साथ साथ लोक-विश्वास,प्रेम-विरह तथा जीवन के

उतार चढ़ाव सब कुछ वर्णन मिलता है। ऐसे भी गीत होते हैं कि गीत में अश्लीलता भरे पड़े होते हैं। रसरकेलि, माएलाजड़, चइतपरब, हुमो, छेरछेरा, करमा आदि प्रसिद्ध लोकगीत हैं। लोकगीतों से संबंधित लोकनृत्य भी हैं – डालखाई,रसरकेलि,घुमरा,ढ़ाब आदि। मादल,ढोल(यह दो मृदंग जैसे हैं), मुहुरी,बाँसुरी, टिमकिड़ि,निसान(यह दो नगाड़ा जैसे है) आदि वाद्य संबलपुरी लोकगीतों में व्यवहृत होते हैं।

हल करता हुआ व्यक्ति के गीत से उसके मनोभाव को समझ सकते हैं –

ए ए...........................

हलिआ गीते गउँछें ग्राम देवती कु

बुढी आ इठान के मोर माउलि गो माउलि

कन्धेन बुढ़ी गो...

(उर रे .. ए ए................................)

ए हे (ए)...............................

गाइबु हलिआ गीतरे टेकी त थिबु राग

सुनु थिबा घाटर पानुति काएँ पानुति

खरडि देबा साग हो ......

(ए बुल बुल बुल बुल...... ए)

ए हे (ए)..........................

साउर जंजाल हो कुकुर र दुख

साउ कु देखिले मोर लागइ लागइ काएँ लागइ

आसुछे जमदुत हो....

(अर अर .... त त त त.)

ए हे (ए).....

खटि गलि बार मास गा नाइँ देला भुति

नाइँ देला भुति काएँ मोर साउत मोर साउत(अ...)

तार पुओ मरु हिटि पड़ि रे....

ए हे .. काठ त काटिलि गा साले, मदे बलि

केते कथा भाबुछु गा जिरा मोर लबंग रे लबंग

उधुलिआ जिमा बलि गो

(अर अर अर अर...)

ए हे..

हलत फांदिलि से कबरा कसरा

हलाइ मारिलि काएँ गाआँर चारि तरा हो.....

आरे भात आनि देबु नानि मोर कमला रे कमला

तोर भाए भुके मला रे ..

(ए बुल बुल बुल बुल)

ए हे बेल सात घड़ी हेलारे हलिआ मरे भुके

केते गधा गाधु मोर जिरा काएँरे लबंग मोर लबंग

पाउँच पका घाटे रे

ए हे..

बाटर बेनुआ रे बिराडि करे बसा

ढलिआ खुसा कु देखि काटि नेला मुसा हो..

आरे केड़े मुसा बलि सते संगात मोर संगात

हेलि उसिन्दिरा रे..

(अर त त त त त ...)

भावार्थ- देवी वंदना कर गीत की शुरुआत करता है। कह रहा है कि हलिआ गीत (श्रमगीत) गाते समय गायक को राग उपर रख कर गाना चाहिए। गाना इस प्रकार का हो कि तालाब के घाट में पड़ा पत्थर भी ध्यान से सुन रहा होगा। वह अपनी अनुभव बताने लगता है क्योंकि पिछले साल साहुकार के यहाँ काम करता था। साहूकार के यहाँ काम करना जैसे कुत्ते की जिन्दगी है। साहुकार को देख कर वह उसे यमदुत समझता है। बारह महिने तक उसने काम किया लेकिन जितना काम करवाया उतनी मजदुरी नहीं मिली। साहूकार के प्रति अपना गुस्सा प्रकट करते हुए कहता है कि उसका बेटा कहीं पर गीर पड़े और उसकी मृत्यु हो जाए। इतने में फिर उसकी प्रेमिका की याद आ जाती है जिसे बह भगाकर लाया था। उसे लगता है कि

आज का काम बहुत हो गया है – इतना कि गाँव के पुरे इलाके को जैसे हल कर लिया हो। उसे भूख लगने लगती है। इसलिए बह अपनी दीदी को याद कर रहा है कि उसकी दीदी खाना(चावल) ला देगी। क्योंकि बह जानता है कि उसकी घरवाली नहाने गयी होगी। घरवाली को वह बहुत प्रेम करता है। बहुत भुखा है फिर भी वह अपनी घरवाली से गुस्सा नहीं करता लेकिन रोस प्रकट करते हुए कहता है कि क्या करूँ घाट इतना अच्छा बनाया गया है कि वह सात घंटे तक(अतिरेकी) भी नहाती है। पिछले रात की बात याद करने लगता है। उसकी घरवाली अच्छा जूड़ा बनाती है। उसके जूड़े को देखकर एक चुहा ईर्ष्या से बाल काट लेता है। फिर वह चुहा को ढुंढ़ने लगा और उसकी रात की नींद उड़ गयी।

ज्यादातर श्रमगीत रामकथा या कृष्णकथा पर आधारित होते हैं। जो लोग खुद की खेती कर रहे होतें हैं या फिर जिस मजदुर को साहूकार का अच्छा व्यवहार मिलता हो वह इस प्रसंग में गीत गाते हैं। यहाँ के लोग ईश्वर विश्वासी हैं तथा सरल जीवन पर ज्यादा महत्व देते हैं। यहाँ की भाषा संस्कृति दूसरी जगहों से भिन्न एवं स्वतन्त्र है। बचपन से ही बच्चा धार्मिक माहोल में बड़ा होता है। जब माएँ या दादियाँ बच्चे को हलकी धूप में तेल मालिस कर रही होती हैं तो अनायास ही उनके मुँह से बार बार निकल रही होती है-

“काठि भांग पतर तुल

षठि माता के जुहार कर। “

विश्वास के अनुसार षठि माता बच्चे की किस्मत लिखती है। इसलिए सुबह नित्यकर्म (काठि – दांतुन) के बाद बच्चे को माँ या दादी माँ षठि माता को प्रणाम करने की सलाह देती हैं।

किसी भी लोकगीत को सुनेंगे तो उसमें एक दार्शनिक अभिव्यक्ति मिल ही जाएगी। इसका भी कारण यह है कि जीवन की विविध पहलू या समस्याओँ को ही गीतों में प्रस्तुत किया जाता है। पहले गीत में भी इसका स्पष्ट उदाहरण है। “समधन गीत” के माध्यम से इसका ओर एक पहलू को समझ सकते हैं। गीत में दो दल होते हैं। पहला दल लड़के(वर) की माएँ की भूमिका में रहती हैं और दूसरा दल लड़की(वधू) की माएँ की भूमिका में रहती हैं। ये एक विनोदपूर्ण संबंध होने का नाते उनकी अभिव्यक्ति में भी एक तरह से हँसी-मजाक का भाव दिखाई पड़ता है। गीत में किशोरियाँ ही महिलाओं की भूमिका निभाती हैं, इसलिए उनके स्वर का जो मिठासपन है गीत को ओर भी मधुर बना देता है। बलांगिर तथा बरगड़ जिले के विभिन्न गाँव में इस गीत को गाते हुए सुन पाएँगे।

पहला दल – आमकु जलदि बह दिए समधेन। जलदि बह दिअ ।।

दूसरा दल – रान्धि बाढ़ि नाइँ जानले केन्ता झिइ देमु समधेन। केन्ता झिइ देमु ।।

पहला दल – रन्धा बढ़ा सिखेइ देमु बह आमकु दिअ समधेन। बह आमकु दिअ ।।

दूसरा दल – नुड़ा सरका नाइँ जानले केन्ता झिइ देमु समधेन। केन्ता झिइ देमु ।।

पहला दल – नुड़ा छेरा सिखेइ देमु बह आमकु दिअ समधेन। बह आमकु दिअ ।।

(शब्दार्थ – बह-बहू, झिइ- बेटी, रन्धा बढ़ा- खाना बनाना-परोसना,नुड़ा सरका- गोबर लिपा-पोती) गीत का भावार्थ यह है कि लड़के की माँ को बहुत ही कम दिनों में एक बहू चाहिए। वह लड़के की माँ को अपने बेटे के लिए उसकी बेटी का हाथ माँगती है। तब लड़की की माँ कहती है कि ये तो बहुत छोटी है। खान बनाना,लिपा पोती तथा अन्य घरेलू काम काज भी नहीं जानती। अब से इस लड़की को ब्याही देंगे तो घर कैसे संभाल पाएगी। जवाबी उत्तर में लड़के की माएँ कहती हैं कि हम उसे सभी काम काज सीखा देंगे। हमें सीर्फ आपकी बेटी चाहिए। इस प्रकार लड़केवाले लड़कीवालों को स्नेहपूर्ण भाव से प्रतिश्रुति देती हैं। तब लड़की की माँ बेटी देने के लिए राज़ी हो जाती है (और उसके दल की एक लड़की हाथ दूसरे दल की लड़का के हाथों में थमा देती है ।)

गीतों को सुन कर श्रोता जैसे मन्त्रमुग्ध हो जाता है। अनायास ही गीतों के साथ साथ जैसे रस,छंद, अलंकार एक धारा में प्रवाहित होता है। कभी कभी तो गायक अवसर विशेष में गीत में अपने तरिके से पदों को जोड़ लेता है। इसलिए गायक को लोककवि कहना भी प्रासंगिक हो जाता है। जोड़े गये शब्दों से माहोल में ओर भी जान आ जाती है ।

❒❒❒

गाँव - कुरसुड़ वाया - सिंधेकेला जिला - बलांगिर ओड़िशा – 767035 भ्राम्यमान - 9853789982

सत्यवादी साहित्य-साधक-उत्कलमणि गोपबंधु दास

–निहारिका मिश्र

इतिहास का पुनर्पाठ तथा पूर्व परंपराओं की आलोचना मानव को अपने वर्तमान की निरव-निश्चिन्ह जीवन धारणा को अज्ञात से सरस व सुदृढ़ बनाने में मदद करती है। इतिहासदृष्टि उसे अपनी शांत जीवन में अनंत आत्मा के संगम सुख से परिचय कराती है। परंपरा के गौरब से वह स्वयं गौरवान्वित महसूस करता है। जिससे वह स्वयं के व्यक्तिव पर आस्था रखने में कामयाब होता है।

पृष्ठभूमि

भारत के पूर्व-उपकुल में आधुनिक ओडिशा विद्यमान है। भारतीय इतिहास के आरंभिक काल से कलिंग-भूमि एक बहुबिदित सांस्कृतिक केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित है। भारत के अन्य राज्यों की तुलना में ओडिशा अंग्रेज-शासन के अधीनस्थ बहुत बाद में हुई थी। यही कारण था कि शिक्षा का आधुनिक रूप भी ओड़िशा तक बहुत बाद में पहुँची। सरकारी प्रयासों के हवाले सन् 1835 नवम्बर को 'पुरि' जिले में पहली बार अंग्रेजी विद्यालय स्थापित हुई,जोकि हिंदु धर्मपीठ (जगन्नाथ धाम) होने के कारण जल्द ही बंद भी हो गई थी। बंगाल एवं ओड़िशा भाषाई अलगाव रखते हुए भी एक ही औपनिवेशिक राज्य थे। अतः बंगाल नवजागरण का सीधा प्रभाव अन्य राज्यों की तुलना में पहले ओड़िशा में ही आई। बंगाल ब्रह्मसमाज की एक शाखा 'उत्कालिय ब्रह्मसमाज' के नाम से 'बालेश्वर' में स्थापित हुई। जिसके माध्यम से पाश्चात्य शिक्षित उत्कलिय अपनी देश,जाति,धर्म,संस्कृति के उत्तरोत्तर उन्नति का विकास कार्य करने लगे। आगे चल कर ओड़िया भाषा अंग्रेजों व बंगाल के कुचक्रान्त की शिकार बनी। उनके द्वारा ओड़िया को बंगला से विकसित प्रमाणित कर मुलोत्पाटन करने की जोर कोशिश हुई। इस कुत्षित चक्रान्त की परिणति यह हुई कि,सरकार द्वारा 'ओड़िया भाषा द्वारा शिक्षादान' प्रत्याहार का आदेश पारित कर दिया गया। इसके विरोध में ओड़िशा के शिक्षित वर्गों ने भी क्षुब्ध होकर आंदोलन छेड़ दी। इस आंदोलन के पुरोधा बने उत्कल के वरपुत्र फ़क़ीर मोहन सेनापति। अंततः सरकार को भी सन 1870 में अपना आदेश प्रत्याहार करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

गोपबंधु दास का सम्यक परिचय

इन्ही घटनाबहुलता के बिच सन 1877 ऑक्टोबर दि. 10

को पुरि जिला साक्षीगोपाल से पांच माइल दूर सुआंडो ग्राम में गोपबंधु दास का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम दैतरी दास एवं माता का नाम स्वर्णमयी दास था। वे बृत्ति से वकील थे। महात्मा गांधी जी के असहयोग आंदोलन में जेल जाने वाले पहले ओड़िया युबक गोपाबंधु जी थे। कारामुक्त होने के उपरांत ओड़िशा के प्रति निष्ठा व त्याग के लिए 'उत्कल प्रादेशिक

सम्मिलनी' के सभापति बंगाल के प्रफुल्लचंद्र रॉय ने गोपाबंधु को 'उत्कलमणि' उपाधि से सम्मानित किया। उनके बाल्यसाथी उन्हें 'दासे' कह कर संबोधित किया करते थे। आधुनिक शिक्षित ओडिशा निर्माण के इतिहास पृष्ठ में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। सत्यवादी वनविद्यालय की प्रतिष्ठा व शिक्षकता के लिए ओडिशावासिओं ने उनको 'पंडित' गोपबंधु दास नाम से सम्मानित किया है। राजनीति से अधिक वे देशसेवा के लिए समर्पित थे। सन 1925 में ओडिशा के बाढ़ प्रभावित अंचलों में तीन साल कठिन परिश्रम के कारण वे टाइफॉयड बीमारी से लड़ते हुए 17 जून 1928 को प्राणत्याग दिए। गोपबंधु साहित्य अनुरागी थे, काव्य-प्रबंध-आलोचना-पत्रकारिता आदि विधाओं में वे साहित्य लेखन करते थे- 'धर्मपद','बंदिर आत्मकथा','कारा कविता','अवकाश चिंता' आदि उनके उल्लेखनीय रचनावली हैं।

'ओड़िशा शिक्षा सम्मिलनी' में गोपबंधु दास का उद्बोधन

सन 16 जून 1912 में(पुरि जिला) साक्षीगोपाल में अनुष्ठित 'ओड़िशा शिक्षा सम्मिलनी' में वे सभापति के रूप में निमंत्रित थे। वहां पर दिए गए उनका व्याख्यान' शिक्षा सम्मिलनी' नाम से ही प्रकाशित है। उनके विचार कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है - शिक्षा जातीय चरित्र निर्माण की भित्ति भूमि है जिसके बिना जातीय जीवन पबित्र,शक्तिशाली व क्रियाशील नहीं बन सकता है। जातीय चरित्र का महत्व और जातीय शक्ति का विकास तभी संभव है जब लोगों को जाति-धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष में शिक्षित-संगठित और ऐकत्रित किया जाएगा। यह महत कार्य केवल शिक्षा के साधन से ही सम्पादित किया जा सकता है। शिक्षा जातीयता है। यह वह साध्य है जो नागरिक के प्राथमिक,माध्यमिक,उच्च शिक्षा,लोक शिक्षा, साधारण शिक्षा, नीति शिक्षा, स्त्री शिक्षा,वैषयिक शिक्षा सभी स्तरों पर उन्नत कर सामर्थ्यवान बनाता है। दासे की मौलिक,उदार,दूरगामी शिक्षा संबंधी मान्यताएं उनके भाषणों में स्पष्ट परिकल्पित हैं। वे अंग्रेजी शिक्षा के साथ प्राचीन पारंपरिक नैतिक शिक्षा के समायोजन के पक्षधर थे।

शिक्षा ग्रहण में मातृभाषा को महत्व

शिक्षा के भाषा संबंधी विचारों में दासे ने मातृभाषा की पैरवी किया है। परवर्ती कालों में "शिक्षार बाहन"(शिक्षा का वाहक) निबंध के द्वारा जर्मन,फ्रांस,अमेरिका और जापान की उदाहरणों की पुष्टि करते हुए शिक्षा के सकल स्तरों में मातृभाषा का उपयोग पर दृढ़ समर्थन करते हैं। उनके मतानुसार विदेशी भाषा जातीय शैक्षिक अबलम्ब कभी बन ही नहीं सकती है। विदेशी भाषा जातीय प्राण में भावों को संचारित कर समग्र देश की चित्तबृत्ति को आंदोलित कर पाने में असमर्थ है। चूँकि जातीय शिक्षा का प्रधान उपादान ही

मातृभाषा है। यह स्थूल प्रादेशिकता को प्रतिनिधित्व नहीं करती बल्कि इश्वरकृपा और वैश्विक मानवधर्म से इसका सरोकार है। मनुष्य की मनोदृष्टि का विकास और उसकी अवबोध क्षमता का परितोषण केवल प्रादेशिक भाषा के जरिए ही सरल व स्वछंद हो सकती है।

इन अवसरों पर दासे ने सभी भारतीय भाषा के लिए संस्कृत की मौलिक देवनागरी लिपि का प्रचलन की सिफारिश की है।

ओड़िशा में शैक्षिक परिस्थितिओं का विश्लेषण

गोपबंधु द्वारा समायोजित शिक्षा संबंधी वैचारिकी एक ही समय में आदर्शोन्मुखी भी है और आधुनिक भी। शिक्षा की उपयोगिता,व्यापकता तथा वैचित्र्य संबंधी उपादानों की महत्ता उनकी आलोचनाओं में स्पष्टीकृत हैं। शिक्षा का उद्देश्य,प्रणाली व परिणति का प्रांजल विश्लेषण से उनकी आलोचनाएं अत्यंत मूल्यवान बन पड़े हैं। 'प्राथमिक शिक्षा','लोक शिक्षा','स्त्री शिक्षा','जातीय शिक्षा','संस्कृत शिक्षा','विश्वविद्यालय शिक्षा' आदि शीर्षकों से उनकी प्रसंगों का आलोचनात्मक विवेचन भी सत्यवादी पत्रिका में प्रकाशित हैं। इसके साथ ही 'शिक्षा क्षेत्र में विविध समस्या','शिक्षा के साथ प्रशासन का सम्बन्ध','शिक्षा के भाषाई माध्यम','शिक्षा में सेवाकर्म' आदि प्रसंगों का मौलिक विश्लेषण भी उन्होने किया है। दरिद्रता,जातीय अकिंचनता,अनुत्साहित स्वदेश-प्रीति आदि गोपाबंधु द्वारा शिक्षा की दुर्बलताओं के रूप में विवेचित है।

शिक्षानीति का मूल आदर्श-गुरुकुल शिक्षा

(सत्यवादी वंविद्यालय)

तत्कालीन शिक्षा पद्धति से बढ़ता असंतोष का निराकरण के लिए बौद्धिक जागृती एवं नूतन जातीय चेतना की आबश्यकता अनुभूत होने लग गई थी। जातीय शिक्षा के प्रति आग्रह एवं बलिष्ठ जाति के स्वरुप निर्माण हेतु संगठन का संकल्प अतीत की प्रेरणा के साथ बर्तमान के सदुपयोग में निहित होना स्वाभाविक था। बंगाल के गुरुदास बनर्जी,रवीन्द्र नाथ ठाकुर,सतीश चंद्र मुखर्जी आदि विद्वानों का दूसरे तरफ विदेशियों में एनिवेशान्त,भग्नि निवेदिता का नाम उल्लेखनीय है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में पुरस्कार वितरण के अवसर पर लॉर्ड हॉर्डिंज ने गुरुकुल शिक्षा माध्यम की प्रशंसा करते हुए कहा था कि शिक्षा के क्षेत्र में सरलता,संयमता,ब्रह्मचर्य,निष्ठा आदि तत्व चरित्र निर्माण की कसौटी हैं।

दासे की गुरुकुल शिक्षा की परिकल्पना कुछ प्रभावी घटनवालिओं से प्रेरित हैं।

- 1910 में आर्य समाजी प्रचारक काहानचंद्र वर्मा द्वारा गुरुकुल शिक्षा की उपयोगिता के ऊपर प्रभावी भाषण।
- लाहौर में प्रतिष्ठित एङ्गलो वैदिक कॉलेज,जलंधर का कन्या महाविद्यालय,मुंसिराम द्वारा स्थापित गुरुकुल अनुष्ठान, हरिद्वार के कांडी में स्थित गुरुकुल आश्रम आदि दृष्टान्त दासे की शैक्षिक आश्रम

की उपयोगिता के प्रति ध्यानाकर्षण करने में सफल रहे थे।

- महाराष्ट्र का दक्षिण भारतीय शिक्षाश्रम, बंगाल की जातीय शिक्षा समिति तथा अन्य प्रदेशों में प्राथमिक शिक्षा समिति आदि के क्रियाकलाप व उद्यम से भी वे उद्बुद्ध थे।
- गोपालकृष्ण गोखले की शिक्षा के प्रति निष्ठा,बरोदा का शिक्षा क्षेत्र में उन्नति से भी दासे अत्यंत प्रभावित थे।

तपस्या,सरल जीवन से संचित समृद्ध शिक्षा के प्रति आग्रह पर गोपबंधु का पूर्ण विश्वास था। उनका मानना था कि शिक्षा का प्रकृत लक्ष्य ज्ञान आहरण के साथ-साथ मनुष्यता अर्जन भी है। इन्ही आदर्शों को समेट कर दासे ने सत्यवादी वनविद्यालय की प्रतिष्ठा की थी। सुदूर ग्राम के शांत-स्निग्ध परिवेश् में उचित निष्ठा व सत्यता को उपालंभ बना कर,धर्मज्ञान मंडलियों के सानिध्य में ज्ञानांन्वेषण एवं तत्वानुसन्धान के माध्यम से व्यक्तित्व का विकाश और चरित्र का समुन्नत निर्माण हेतू अनुष्ठान परिकल्पित थी।

अंग्रेजी माध्यम में लिखी गई 'सत्यवादी स्कूल रिपोर्ट' शिक्षाव्यापार की प्रसारित व्याख्या है,जो दासे द्वारा विश्वशिक्षा प्रसंग में पढ़ी गई थी। प्रयोजनशीलता के आधार पर बिभिन्न स्थलों पर स्कूल कॉलेजों की स्थापना कर जनसाधारण को शिक्षित करना एवं सरकारी उद्यम के साथ परिपूरक बन कार्य करना 'विश्व सेवा संघ' के प्रधान उद्देश्य था। उनका मूल लक्ष यह भी थी कि ओडिशा के विभिन्न अंचलो में संगठित शिक्षा-प्रसार आंदोलनों को श्रृंखलाबद्ध कर जातीय शिक्षा आंदोलन की व्यापकता प्रदान करें।

सत्यवादी वनविद्यालय की स्थापना भारतीय संस्कृति-सभ्यता,जीवनादर्श,नैतिकता के साथ पाश्चात्य शिक्षा व सभ्यता की उपकारक विभागों का समन्वय व समायोजन कर भारतीय शिक्षा और जातीयता का विकास हेतु प्रतिबद्ध् थी। छात्र जीवन में सत्य-अभ्यास के लिए नैतिक शिक्षा,सेवा मूलक कार्य की योजना भी एक साथ परिचालित थी। गोपाबंधु के शिक्षा से अभिप्राय जीवनानुमुखी होने से था।

इतिहास अनुशीलन की दृष्टि

इतिहास का पुनर्पाठ तथा पूर्व परंपराओं की आलोचना मानव को अपने वर्तमान की निरव-निश्चिन्ह जीवन धारणा को अज्ञात से सरस व सुदृढ़ बनाने में मदद करती है। इतिहासदृष्टि उसे अपनी शांत जीवन में अनंत आत्मा के संगम सुख से परिचय कराती है। परंपरा के गौरब से वह स्वयं गौरवान्वित महसूस करता है। जिससे वह स्वयं के व्यक्तिव पर आस्था रखने में कामयाब होता है। इतिहास मानव को आत्मशक्ति पर भरोसा तथा भविष्य परंपराओं के निर्माण हेतु शक्ति व प्रेरणा देती है। अतीत-गौरव-शिक्षा से बंचित होना दुर्भाग्यपूर्ण है। कर्मानुष्ठान प्रति दृढ़ विश्वास, जागतिक महामानविय परंपरा में विलीन होने की कामना जगाने में इतिहास प्रधान शिक्षक की भूमिका निभाती है।

19वीं सदी में इतिहासकार - कनिंगहाम, सर विलियम जॉन्स,मैक्स मूलर,विल्सन फर्गुसन,राजेंद्र

लाल मित्र जैसे महान इतिहासकारों की शोध विषयक रचनाएं प्राचीन भारत के गौरव एवं इतिहास को पुन प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनसे विशेष प्रभावित गोपबंधु जी भी राष्ट्र को राजनीति एवं संस्कृति के क्षेत्र में आत्मचैतन्य करने के लिए अभिलाषी थे, जो उन्हें इतिहास शिक्षा के साथ ही संभवप्राय लगा।

जातीय स्तर पर उन्नति का मार्ग-शिक्षा

जनता के शिक्षित होने से उसके जातीय जीवन श्रृंखलित होती है। उसमे सहयोगी मनोबृत्ति का जन्म होता है और देश अपराध-अशांति से दूर सुरक्षित रहती है। शिक्षानुष्ठानों में महापुरुषों की प्रतिकृति एवं प्रधान जातीय घटनाओं की छायाचित्र छात्रों का उत्साह वर्धन करता है। छात्रपिढी भविष्यत् समाज एवं नूतन साम्राज्य निर्माण की ज्वाला हैं। उनका शारीरिक,मानसिक तथा नैतिक उन्नति अति आबश्यक है,जो केवल शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। उनकी दृढ़ धारणा थी कि तन्मय तत्वानुसन्धान,सुदृढ़ मानसिक शक्ति,सरस ह्रदय व निष्ठा से विहीन विश्वविद्यालयी शिक्षा सर्बथा निरर्थक है। भारत के प्रमुख विश्वविद्यालयों के विद्वान सर गुरुदास,आशुतोष,रासविहारी,भंडारकर,तिलक,गोखले से वे प्रभावित थे। विदेश से लौटे भुबनानंद दास,जापान से शिक्षित कैलाश चंद्र भरतकर के शिक्षा संबंधी विचारों को वे देश के पक्ष में हितकारी मानते हैं।

प्राथमिक शिक्षा का महत्व के सम्बन्ध में गोपबंधु ने कई बार सरकार का ध्यानाकर्षण किया था। गोखले द्वारा प्रस्तावित अबैतनिक निशुल्क प्राथमिक शिक्षा प्रस्ताव का वो सराहना किये हैं। वे प्राथमिक शिक्षा को किसी भी देश के जनताओं का अधिकार मानते हैं।

संस्कृत शिक्षा एवं साहित्य का अनुशीलन

संस्कृत शिक्षा के प्रति उनका गहरा प्रेम व अनुराग सत्यवादी पत्रिका में आलोचित उनकी निबधों में सहज अबलोकन किया जा सकता है। वे कहते है कि संस्कृत साहित्य भारतीय आर्यों का गौरवगाथा है। स्थूल मानव प्राण में देवत्व की प्रतिष्ठा संस्कृत साहित्य शिक्षा द्वारा संभव है। 'पुरि संस्कृत कॉलेज' नामक आलोचना में गोपबंधु लिखते हैं-"संस्कृत शिक्षा के बिना भारतीय युवक का शिक्षा असंपूर्ण है। तत्काल देश जातीय स्वर से झंकृत हो रहा है। वास्तव में शिक्षा जब तक जातीय भावना के रंग से सराबोर नहीं हो जाती तबतक शिक्षा की उन्नति नहीं हो सकती। जो संस्कृत शिक्षा को निरर्थक मानते हैं मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि सरकारी नौकरी के बिना अंगेजी शिक्षा का महत्व क्या है?"

शिक्षा में जातीयता

गोपाबंधु द्वारा प्रचलित शिक्षा का सम्बन्ध केवल जातीय भावों से उद्वेलित है। भारत में प्रचलित तात्कालिक शिक्षा का संपर्क जातीयता से छिन्न था। शिक्षा को जातीयताभिमुखी करना दासे की शिक्षा

नीति का मूल उत्स था। वे लिखते हैं "भारतीय शिक्षा को भारत की परंपरानुकूल होना आवश्यक है। परंतु आज भारत में शिक्षा भारत विमुख होकर इंग्लैंड की शिक्षा है। आज का भारत-निर्माण उसकी स्वयं की सनातन धर्म एवं सभ्यता से विच्छिन्न होकर विदेशी आदर्शों में ओतप्रोत हैं। जिसके कारण आदर्श अज्ञानता की दासत्व स्वीकार कर हम भारतवासी गौरब का अनुभव करते हैं।

निष्कर्ष

गोपबंधु दास उत्कलिय जातीय जीवन के अनुशासन हैं। उनकी आकांक्षा थी शैक्षिक साधनों से वे जाती व देश को जागृत करें और उनकी आध्यात्मिक चेतना को आत्मचितन्य से विकशित करें। उन्होंने परतंत्रता के शोकाकुल अन्धकार में शिक्षा,समाज,भाषा,साहित्य आदि सभी संदर्भो को तेजोदीप्त करने की नेतृत्व लिया था । उनकी शक्ति संचारणी रचनाएं,स्पष्ट कथन शैली; उज्जवल भविष्य निर्माण के चिंगारी वहन करता है। गोपबंधु विंश शताब्दी के संपूर्ण भारत के महानायक हैं।

संदर्भ

1. 'ओड़िआ साहित्यर इतिहास'-डॉ. सुरेंद्र कुमार महारणा- ओड़िशा बुक स्टोर,कटक-2015
2. 'साहित्यर सूचीपत्र'-बिभूति पट्टनायक- सुधा प्रकाशन,कटक-2017
3. 'साहित्य ओ समीक्षा'- पठाणी पट्टनायक- विद्यापुरी,कटक- 2010
4. 'आधुनिक ओड़िआ गद्य साहित्य'- डॉ श्रीनिवास मिश्र- विद्यापुरी,कटक- 2010
5. 'जुगपुरुष गोपाबंधु दास'- डॉ सूर्यनारायण दास- ओड़िशा बुक स्टोर,कटक- 2000
6. 'पंडित गोपाबंधु दास'- डॉ अर्चना नायक- ओड़िशा साहित्य अकादेमी,भुवनेश्वर- 1995
7. "GOPABANDHU THE LEGISLATOR"- Gopabandhu Birth Century Celebration Committee- Gopabandhu Bhawan- 1995
8. 'Satyavadi School and Nationalism'- Jayanta Kumar Das- Odisha review Journal- July 2012
9. https://www.researchgate.net/publication/290118208_An_experiment_in_nationalist_education_Satyavadi_School_in_Orissa_1909-26
10. http://orissamatters.wordpress.com/tag/pt-gopabandhu-das/

❒❒❒

1. हिंदी प्रवक्ता वेदव्यास महाविद्यालय ,राऊरकेला सुंदरगढ़,ओडिशा
फ़ोन – 9439925602, 8249132521 Email – niharika.ksn1992@gmail.com

हिंदी आलोचना: एक संक्षिप्त विवेचन

– सन्तोष खन्ना

शहर के समृद्ध-सम्मानित व्यक्ति की इकलौती संतान होने के कारण ऋचा को अपने माता-पिता की ओर से प्यार के साथ-साथ वह सब मिला था जिसे पाने के लिए लोग अपनी आधी जिंदगी गँवा देते हैं। उसे कुछ कहने की जरूरत पड़ती ही नहीं थी कभी।

समालोचना साहित्य की सृजनात्मकता, सरोकार और भाषा-शैली का विवेचन, अन्वेषण और मूल्यांकन करने वाली एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विधा है जो साहित्य के पीछे नहीं उसके समानांतर चलती है। सृजनात्मक साहित्य की तर्ज़ पर समालोचना में भी मौलिक साहित्य-सी सृजनात्मकता और संवेदनशीलता की अपेक्षा रहती है। साहित्य कब कौन-सी दिशा पकड़ेगा अथवा साहित्य में वैचारिकता और प्रभविष्णुता कितनी प्रभावी या बदलावकारी होगी, कभी कभी समालोचना इसे भी तय करती है बशर्ते समालोचना तटस्थ, निष्पक्ष और पूर्वाग्रहों से मुक्त हो।ऐसी ही समालोचना किसी दक्ष वैद्य की तरह साहित्य की नब्ज देख कर निदान सुझाने की प्रक्रिया है। इसके लिए जरूरी है कि समालोचक अपने समय का पारखी हो और किसी धारा के साथ बहने या बहकने से बचे और निष्पक्षता से एतिहासबोध और परम्परा बोध के पारदर्शी आईने में साहित्य के निकष को इंगित करता चले।

साहित्य का उद्देश्य एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना और उसे संस्कार देना होता है। साहित्य 'पशुता से सभ्य होने की' तमीज सिखाता है और साथ ही वह जीवन के रास्तों में पड़ने वाले गढ्डों के प्रति सावधान भी करता चलता है। किसी विद्वान ने सही कहा है कि मनुष्य और समाज के लिए हितकारी रचना ही साहित्य है। यथार्थ के नाम पर रचा जाने वाला साहित्य मनुष्य में कई प्रकार की भावनाओं का उद्दीपन तो कर सकता है, उसकी भावनाओं का विरेचन नहीं करता जिससे साधारणीकरण की क्रिया घटित होती है। आज के साहित्य का प्राय: स्वरुप यह रहता है कि साहित्यकार तात्कालिक लोकप्रियता की दौड़ में काल की कसौटी पर खरे उतरे मानक या मूल्य तोड़ नयेपन की ओर बढ़ता है तो समालोचक आयातित प्रतिमानों के आधार पर प्रगतिशीलता के नाम पर उसे ऐसे उछालता है मानों कोई पारस मिल गया हो। साहित्यकार में इतना धैर्य नहीं होता कि वह गहन अध्ययन और शोध से जानने का प्रयास करे कि उस मानक या

मूल्य का वास्तविक आशय क्या था?

वैसे भारत में समालोचना की प्राचीन काल से ही पुष्ट परम्परा रही है। किंतु आधुनिक काल आते आते उसके विकास में पाश्चात्य साहित्य और समीक्षा का अत्यधिक योगदान शुरु हो गया था। वस्तुत: भारतेन्दु काल से भारत में समालोचना पाश्चात्य समीक्षा की छत्रछाया में ही संपोषित और पल्लवित हुई है। कृष्ण की भांति उसका जन्म तो देवकी रुपी भारतीय काव्यशास्त्रीय कोख से हुआ परंतु उसका पालन-पोषण यशोदा रुपी पाश्चात्य समीक्षा के स्नेहमय प्रांगण में हुआ। अतः वर्तमान भारतीय समीक्षा में पौर्वात्य और पाश्चात्य समीक्षा का मणिकांचन संयोग इतना अधिक है कि इसे दोनों के समृद्ध साहित्यों के समालोचना संबंधी सिद्धांतों का मिश्रित रुप कहा जा सकता है।

हिंदी समालोचना की संकल्पना के संदर्भ में डा विश्वनाथ त्रिपाठी का मत है कि हिंदी समालोचना पश्चिम की नकल नहीं, अपितु अपने साहित्य को समझने, बूझने और उसके विश्लेषण करने के प्रयास से उदभूत हुई है।

भारतीय मनीषियों ने पाश्चातय सिद्धांतों का अंधानुकरण न करते हुए अपनी नीर-क्षीर विवेक दृष्टि से उन्हीं सिद्धांतों को अपनाया जो भारतीय मनीषा से मेल खाते थे जिसका एक सुखद परिणाम यह हुआ कि वर्तमान समालोचना को केवल भारतीय समालोचना विधा ही कहा जा सकता है क्योंकि अब उनका एक दूसरे के बिना अलग अस्तित्व की कल्पना करना व्यर्थ है क्योंकि आप एतिहास की सच्चाई को किसी तरह से भी झुठला नहीं सकते। वैसे वर्तमान समालोचना की निर्मिति में शतियों से भारतीय साहित्य मनीषियों ने जो अभूतपूर्व योगदान दिया है वह उसी के बल पर भारतीय मनीषा में अपना विशिष्ट स्थान बना चुकी है क्योकि उन्होंने पूर्वी और पश्चिमी समीक्षा के सिद्धांतों को जो अपने अथक परिश्रम और निष्ठा से एकमेक करने का उपक्रम किया है वहीं वर्तमान की अमूल्य धरोहर है। यह होते हुये भी यह कहा जा सकता है कि ' उसकी निर्मिति में उनका निजी साहित्यिक परिवेश और निज़ साहित्य भूमि रही है। हिंदी-समीक्षा का मूल कारक हिंदी काव्य ही है।

प्रश्न उठता है कि वास्तव में समालोचना का अर्थ है क्या? आलोचना या समालोचना का अर्थ किसी कृति को पढ़ कर उसके गुणों और दोषों और उसकी उपयुक्तता की विवेचना करना है। समालोचना का शाब्दिक अर्थ है अच्छी तरह देखना। आलोचना का उद्भव 'लुच' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है देखना। आलोचना अथवा समालोचना अंग्रेजी शब्द 'criticism' का पर्यायवाची है। Criticism शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द criticos से हुई है जिसका अर्थ विवेचन करना या निर्णय देना है। वर्तमान में अब इस शब्द से तात्पर्य है किसी कृति विशेष के गहन अध्ययन के साथ उसकी सृजन प्रक्रिया पर प्रकाश डालना और साथ ही उसके रचनाकार के व्यक्ति और उसके युग बोध को रेखांकित कर उसका समग्र रुप से आकलन करना है।

रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'आधुनिक आलोचना संस्कृत काव्य निरुपण से स्वतंत्र चीज़ है।आलोचना का कार्य है किसी साहित्यिक रचना की अच्छी तरह परीक्षा कर उसके रुप,गुण और अर्थ का निर्धारण

करना। समालोचना साहित्यिक कृति की विश्लेषण परक व्याख्या है। साहित्यकार अपनी रचना में जीवन के प्रामाणिक अनुभूत सत्य को व्याख्यायित करता है तो समालोचक उस कृति में अनुस्यूत तत्त्वों पर गह चिंतन मनन कर उसकी व्याख्या करता है।।'साहित्य में जहां रागतत्व है वहीं आलोचना में बुद्धि तत्त्व रहता है।' तभी तो डा श्याम सुन्दर दास ने आलोचना की परिभाषा करते हुए कहा है कि

यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानते हैं तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना होगा।

वास्तव में साहित्य और समालोचना में निकट का संबंध है। समालोचना के सिद्धांतों की निर्मिति में साहित्य का स्वरुप बहुत बड़ा कारक होता है। वस्तुत साहित्य की भीति पर ही आलोचना का अस्तित्व निर्भर करता है क्योंकि साहित्य और समालोचना का चोली दामन-सा संबंध होता है। जहां साहित्य है वहीं किन्हीं न किन्हीं सिद्धांतों को साथ लिये समालोचना अग्रसरित होती है।वह लेखक और पाठक के बीच एक महत्त्वपूर्ण सेतु का काम करती है चूंकि समालोचक कृति विशेष का सह्दय, निरपेक्ष और निपुण व्याख्याता होता है, कृति का वहीं रुप उभर कर साहित्य के क्षेत्र में अपना स्थान बना लेता है।

प्रश्न यह है कि समालोचना का स्वरुप क्या हो? हर युग या काल में समालोचना युगीन परिस्थितियों और मूल्यबोध के अनुरूप स्वयं को ढाल लेती है अथवा उन्हीं संदर्भों को साहित्य में प्रवेश दिलाती है जो कालविशेष की मानसिकता से मेल खाती है। अगर ऐसा न होता तो समालोचना जड़ता से ग्रसित हो कर एक अप्रभावी विधा बनकर रह जाती है, अतः समयानकूल साहित्य में अवतरित भावों, विचारों और दर्शन का वह अनुसरण कर वह साहित्य की भी पथ-प्रदर्शक बन जाती है क्योंकि लकीर का फकीर बनने से कुछ भी परिवर्तनकामी नहीं होता।

पश्चिम आलोचना के आदि गुरु प्लेटो साहित्य में ही नहीं, बल्कि साहित्यकार में भी श्रेष्ठ चरित्र, आचरण और सत्य के अनुसरण के समावेश के पक्षधर थे। उनके अनुसार वहीं साहित्य श्रेष्ठ और पठनीय था जो सत्य संदेश से श्रेष्ठ आचरण में सहयोग दे सके। इसलिए प्लेटो कविता को सत्य से दूर मानते थे।उनके अनुसार विचार ही चरम तत्त्व है ,दि आइडियाज आर द अल्टीमेट रियलिटी'। अरस्तु ने इस दृष्टिकोण को व्यापक बनाते हुए संभावित सत्य की स्थापना की। उनके अनुसार साहित्यकार जिस सत्य का निरुपण करता है या अभिव्यक्त करता है उसमें हमें विज्ञान का सत्य नहीं, संभावित सत्य के दर्शन होते हैं। यह यथार्थवादी दृष्टिकोण था। इस प्रकार यूरोपीय समीक्षा की दृष्टि से रचना के विषय सौंदर्य सिद्धांत, रचनाकार की जीवन दृष्टि से रचना के गुण दोष और रचनाकार की अंतर्दृष्टि का विवेचन किया जाता रहा है।इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समीक्षा का क्षेत्र जहां अधिकतर काव्यक्षेत्र तक सीमित रहा था वहां पाश्चत्य समीक्षा ने उसे बहुत प्रभावित किया है और वर्तमान समालोचना में साहित्य संबधी सभी विधायें शामिल हैं।

समालोचना साहित्य से अलग नहीं होती,वह भी साहित्य की श्रेणी में ही आती है। लेखक रचना का निर्माण करता है तो समालोचक उसका अनुसंधान कर उसकी व्याख्या करता है। वह साहित्य के प्रतिमानों के अनुरूप उसका पठन और चिंतन मनन करता है। उसका चिंतन मनन जितना गहराई लिये होगा, उतना

ही अधिक ही वह रचना के उस सागर से अमूल्य हीरे मोती निकाल कर लायेगा।जब वह ऐसा करता है तो जाने अनजाने उसके मानस में प्रस्तुत उसके साथ साहित्य की समूची परम्परा भी अपनी भूमिका निभाती है। पश्चिम के कवि और विचारक टी. एस .इलियट ने अपनी समालोचना संबंधित पुस्तक ' टेरेडिशन ऐंड इंडीविज़ुयल टेलेंट' में कहा है कि साहित्यकार अपने साहित्य में समूची साहित्यिक परम्परा को साथ लिया चलता है और उसी प्रकार समालोचक भी साहित्यिक परम्परा से अनभिज्ञ हो कर किसी भी कृति की समालोचना के साथ न्याय नहीं कर सकता है, समालोचक वस्तुत रचनाकार और सजग पाठक के बीच एक सेतु का कार्य करता है। इस प्रकार समालोचक का कर्त्तव्य किसी भी रचना को पाठक के सम्मुख सही परिपेक्ष्य में प्रस्तुत करना होता है। अतः रचना और समालोचना के बीच कोई विभेदक रेखा नहीं खींची जा सकती है। अतः समालोचना की प्रकृति मूलतः सर्जनात्मक ही हुआ करती है। इस संबंध में कवि-समाल़ोचक मरते का कहना सही है कि "आलोचना का संसार कविता का विरोधी या उसका विलोम नहीं,या उसका प्रतिद्वंद्वी नहीं, बल्कि वह कविता से लगा हुआ एक समानांतर संसार है। यह दोनों संसार अपनी अपनी जगह पर स्वतंत्र सर्वप्रभुतासंपन्न संसार है और दोनों के बीच मित्रता की संधि है। दोनों की एक दूसरे के हितों में आपसी जिम्मेदारी है। कविता कुछ भी सिद्ध नहीं करती सिवाय एक अनुभव को रचने के और आलोचना भी कुछ नहीं करती सिवाय उस रचे हुए अनुभव को व्यापक अर्थ विस्तार देने के। अनुभव ही कविता को आलोचना से जोड़ता है। कविता में अनुभूति होती है तो आलोचना में विचार।"।

हिंदी साहित्य और हिंदी समालोचना में रामचंद्र शुक्ल का अद्वितीय स्थान और उनका प्रभूत अवदान है।उन्होंने साहित्य में नैतिकता और लोक-मंगल की भावना का पक्ष लिया। उन्हें हिंदी समालोचना का शिखर विद्वान माना जाता है। शुक्लकालीन हिंदी समालोचना में कई प्रकार के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है जिसमें शुक्ल जी का प्रमुख अवदान रहा है। वे इस युग की समालोचना के प्रर्वतक माने जाते हैं। रामचन्द्र शुक्ल जी के बहुविधि व्यक्तित्व के संबंध में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी कृति 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में उन पर लिखा है कि 'भारतीय काव्य शास्त्रीय आलोचना का उन जैसा इतना गंभीर और स्वतंत्र विचारक हिंदी में कोई दूसरा हुआ ही नहीं है। अन्य भारतीय भाषाओं में भी हुआ है या नहीं, यह ठीक से नहीं कह सकते। शायद नहीं हुआ है।'

उस युग में भारत में पश्चिम साहित्य का प्रभूत प्रभाव देखने को मिलता है, इसलिए कहा जा जाता है कि ' आचार्य शुक्ल जी के प्रमुख आलोचनात्मक सिद्धांतों के मूल में पाश्चात्य साहित्य और मनोविज्ञान का बड़ा गहरा प्रभाव है।' रामचन्द्र शुक्ल जी ने न केवल पाश्चात्य मनोविज्ञान का भी गहरा अध्ययन किया था और उसका प्रभाव उनकी समालोचना संबंधी सिद्धांतों पर भी प्रलक्षित होता है। यह सही है कि शुक्ल जी समालोचना के क्षेत्र में मनोविज्ञान संबंधी उनका दृष्टिकोण रिचर्ड्स से काफी प्रभावित था। रिचर्ड्स ने मनोविज्ञान संबंधित अपनी अवधारणा के बारे में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रिसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिजम' में कला-मीमांसा संबंधी 'एस्थेटिक' अनुभव का मनोविज्ञान के आधार पर विष्लेषण किया है और वह इस संबंध में उनसे प्रभावित हैं परंतु शुक्ल जी उसके अनुकर्ता नहीं हैं। 'दोनों में मौलिक भेद है। जहां रिचर्ड्स की साहित्यिक अवधारणाओं का प्रमुख आधार वैयक्तिक मनोविज्ञान है वहीं शुक्ल जी

की साहित्यिक अवधारणाओं की आधारशिला सामाजिक मनोविज्ञान है।' इस आधार पर कहा जा सकता है कि शुक्ल जी ने पूर्व और पश्चिमी समीक्षा सिद्धांतों का सम्मिश्रण कर एक स्वतंत्र समालोचना शास्त्र का प्रणयन किया है अर्थात् उन पर यत्र यत्र पश्चिमी समीक्षा सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा है और उन्होंने यत्र तत्र पश्चिम के समीक्षा सिद्धांतों का भारतीय समीक्षा सिद्धांतों के साथ समन्वय किया है किन्तु इसका यह कदापि अर्थ नही हैं कि उनके मूल समीक्षा सिद्धांतों का स्रोत पश्चिमी है क्योंकि प्रभाव और स्रोत दो भिन्न भिन्न आयाम हैं।

इस संबंध में अगर यह कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कविता में जो स्थान निराला जी का है या उपन्यास के क्षेत्र में जो स्थान मुंशी प्रेमचंद का है, समालोचना के क्षेत्र में वहीं स्थान आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का है, इसी बात को राम विलास शर्मा ने अपनी पुस्तक ' रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आचोचना' में कहा है कि हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का वहीं स्थान है जो स्थान उपन्यासकार प्रेमचंद और निराला का है।

यद्यपि राम चंद्र शुक्ल जी मनोविज्ञान संबंधित अवधारणाओं के लिए पश्चिम से प्रभावित रहे हैं किन्तु उनका उद्देश्य पश्चिम की मनोविज्ञान संबंधित अवधारणाओं को मौलिकता का मुखौटा लगा कर साहित्य शास्त्र में जोड़ना नहीं था बल्कि भारतीय साहित्य शास्त्र की रस निरुपम संबंधी धारणाओं को पश्चिमी मनोविज्ञान की कसौटी पर कस कर उसे सार्वभौमिकता प्रदान करना था। इसलिए जब वह साहित्य और मनोविज्ञान की बात करते हैं तो उसमें वह जीवन-सामजस्य, मानसिक विकास, लोक-धर्म और लोक-मंगल की भावना पर ही बल देते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के साहित्य और समालोचना संबंधी चिंतन और सिद्धांतों के संदर्भ में वर्तमान में ऐसा महसूस होने लगा है कि हमें आज के संदर्भ में रामचंद्र शुक्ल के सिद्धांतों का पुनः अध्ययन करने की जरूरत है क्योंकि आज के युग में हमने नैतिक सिद्धांतों को उठा कर कहीं ताक पर रख दिया है और आज के बाजारवाद, पूंजीवाद और परिणामतया अत्यधिक उपभोक्तावाद ने हमारे जीवन और समाज को इतना आक्रांत कर रखा है कि हमें प्राय ऐसे कार्य और साहित्य में आनन्द आने लगा है जिसमें नैतिकता के प्रति विद्रोह होता है। प्राय ऐसा साहित्य पसंद किया जाने लगा है जिसमें खुलापन, अश्लीलता की सीमा को छूते प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष यौन चित्रण होते हैं। इसके लिये जीवन और समाज की सच्चाई और यथार्थवाद की दलीलें दी जाती हैं।

डा राम विलास शर्मा मार्क्स वादी समीक्षकों की भांति शुद्ध कलावादी दृष्टिकोण के विरोधी हैं परंतु वह मार्क्सवादी संकीर्णताओं के पक्षधर नहीं है, वह एक उदारवादी प्रगतिशील समालोचक हैं। उन्होंने न केवल मार्क्सवादी सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया था बल्कि उन्होंने ऋगवेद का भी गहन अध्ययन किया था और उससे वह बहुत प्रभावित थे। वह केवल साहित्य और समीक्षा के ही उद्भट विद्वान नहीं थे, उनका इतिहास और राजनीति का भी गहरा अध्ययन था। उन की विद्वता का एक उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि वह भारत की प्राचीन संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट आयामों के पक्षधर थे।'यही कारण है कि उनकी समीक्षा-दृष्टि सिद्धांतत: अंतरराष्ट्रीय होते हुए भी उनमें राष्ट्रीयता का कहीं भी अभाव नहीं है। तुलसी हमेशा वामपंथियों

के निशाने पर रहे क्योंकि वह उन्हें सामंतवादी शक्तियों के पक्षधर मानते हैं परंतु राम विलास शर्मा जी ने तुलसी साहित्य को सामंतवादी विरोधी प्रतिमानों का दस्तावेजी दर्पण कहा है। उन्होंने रामचंद्र शुक्ल जी के सिद्धांतों की पक्षधरता करते हुए कहा कि शुक्ल जी ने आलोचना के माध्यम से उसी सामंतवादी संस्कृति का विरोध किया जिसका उपन्यासों के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद ने और कविता के माध्यम से निराला ने किया था।

आज का साहित्य प्रगतिशील, प्रयोगवादी और अन्य अनेक वादों प्रतिवादों के माध्यम से हो कर हम तक पहुंचा है और अभी भी हम पश्चिमी सिद्धांतों की मृग मरीचिका के पीछे भाग रहे हैं और हिंदी साहित्य में काफी कुछ अच्छा लिखे जाने के बावजूद अपनी साहित्य परंपरा में ऐसा कुछ मौलिक नहीं जोड़ सके हैं अथवा अगर ऐसा कुछ मौलिक लिखा गया है तो उसे रेखांकित और चिह्नित नहीं कर पायें हैं जो मौलिक हो और साथ ही भारतीयतोन्मुख हो और उसमें हमारी प्राचीन समृद्ध संस्कृति को अनस्यूत अथवा प्रतिबिंबित किया गया हो। वस्तुत: हो यह रहा है कि हम अपनी प्राचीन संस्कृति को अपनी रचनाधर्मिता में

अनुस्यूत करने के स्थान पर अपनी उस मौलिक और आधुनिक जीवनोपयोगी धरोहर के पीछे लट्ठ ले कर खड़े हो गये हैं अथवा हमारी रुचि उसकी सायास गलत व्याख्या करने और उसका उपहास करने में अधिक है उसका गहराई से अध्ययन करने और उसे सही परिपेक्ष्य में समझ कर नीर क्षीर विवेक से उसे आज के संदर्भों में हमारी प्राचीन पुष्ठ परम्परा को रिडिस्कर्व करने में कोई रुचि नहीं रह गई है।

साहित्य के विश्व फलक पर किसी नये आंदोलन की अनुपस्थिति से भारत में भी कुछ नया नहीं है। जहां तक भारतवर्ष का संबंध है यह जरूरी नहीं कि जब विश्व में साहित्य में कुछ उल्लेखनीय नहीं है तो भारत में कुछ नया आये ही नहीं। भारत में साहित्य में प्राचीन परम्परा के प्रचुर भंडार हैं। भारत का प्राचीन संस्कृत साहित्य और संस्कृति ऐसा अमूल्य संसाधन है कि यहां का लेखक यदि उसका श्रम और निष्ठा से परायण और शोध करें तो उसमें नवीन जनहित वादों की मणियां प्राप्त की जा सकती हैं और साहित्य में ऐसी कृतियां आ सकती हैं जो समूची मानवता के लिये हितकारी और सर्वकालिक हो सकती हैं। साहित्य और समीक्षा में मौलिक और नये रास्तों का अन्वेषण अब इस नई शती के युवा लेखकों को करना है।

संदर्भ

1. हिंदी समीक्षा:स्रोत एवं सूत्रधार - प्रोफेसर सत्यदेव मिनरल, हेमाद्रि प्रकाशन, दिल्ली
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल- रामचंद्र तिवारी
3. हिंदी आलोचना: एक पुनर्विचार डा सुंदर लाल कथूरिया
4. साहित्यिक निबंध: श्री राजनाथ शर्मि, विनोद पुस्तक भंडार, आगरा
5. The Tradition and the Individual Talent - T.S.Eliot
6. चिंतामणि- राम चंद्र शुक्ल
7. पश्चिम एशिया और ऋग्वेद - डा राम विलास शर्मा
8. dinified blogger.

❒❒❒

1. साहित्यकार एवं वरिष्ठ लेखक